

बिगुल पुस्तिका-11

मज़दूर आन्दोलन में एक नयी शुरुआत के लिए



राहुल फ़ाउण्डेशन
लखनऊ

ISBN 978-81-906415-2-4

मूल्य : रु. 15.00

पहला संस्करण : जनवरी, 2008

प्रकाशक : **राहुल फ़ाउण्डेशन**
69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज,
लखनऊ-226 006 द्वारा प्रकाशित

आवरण : **रामबाबू**

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

**Mazdoor Aandolan mein Nayi Shuruaat ke liye by
Bigul Editorial Board**

प्रकाशकीय

भारत के क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन में मौजूद गतिरोध को तोड़ने और एक नयी शुरुआत के लिए जिन मुद्दों पर आज गहराई से और बिना देर किये सोचे जाने की ज़रूरत है, उन्हें मज़दूर अख़बार 'नयी समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल' के लेखों में लगातार उठाया जाता रहा है। हम पाठकों के लिए 'बिगुल' के हाल के कुछ अंकों में प्रकाशित दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख प्रस्तुत कर रहे हैं जिनमें मज़दूर आन्दोलन को क्रान्तिकारी आधार पर पुनर्संगठित करने, क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण एवं गठन के प्रश्न और भारत में एक नये सर्वहारा नवजागरण तथा सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभारों पर विस्तार से विचार किया गया है।

परिशिष्ट के रूप में हमने 'बिगुल' अख़बार के प्रवेशांक के सम्पादकीय को शामिल किया है जिसमें मज़दूर आन्दोलन में एक क्रान्तिकारी मज़दूर अख़बार की भूमिका पर चर्चा की गयी है।

— राहुल फ़ाउण्डेशन

25.1.2008

अनुक्रम

- गुज़रे दिनों की नाउम्मीदियों और आने वाले दिनों की उम्मीदों के बारे में कुछ बातें :
समस्याओं, चुनौतियों और ज़िम्मेदारियों के बारे में कुछ बातें 5
- अभी भी जीवित है ज्वाला! फिर भड़केगी जंगल की आग! 27
- एक बार फिर मुक्ति का परचम उठाओ!... 41
- एक नये क्रान्तिकारी मज़दूर अख़बार की ज़रूरत 49

गुज़रे दिनों की नाउम्मीदियों और आने वाले दिनों की उम्मीदों के बारे में कुछ बातें समस्याओं, चुनौतियों और ज़िम्मेदारियों के बारे में कुछ बातें

इक्कीसवीं शताब्दी का एक और वर्ष बीत चुका है और 2007 का वर्ष आ चुका है। पहले के वर्षों की ही तरह गुजरा हुआ वर्ष भी व्यापक मेहनतकश जनता के लिए लगातार बढ़ती बेचैनी और घुटन से भरा हुआ एक और वर्ष रहा है। शासक वर्गों के विभिन्न धड़े जनता से निचोड़े गये मुनाफ़े के बँटवारे के लिए आपस में लड़ते रहे हैं, जाति और धर्म के नाम पर जनता को बँटने के लिए बुर्जुआ राजनीतिक पार्टियाँ नये-नये मुद्दे उछालकर बदस्तूर वोट बैंक की राजनीति करती रही हैं, संसदीय सुअरबाड़े में पूँजी के वफ़ादार चाकर फ़ालतू की बहसबाज़ी करते रहे हैं या सोते-ऊँघते रहे हैं तथा समूचे शासक वर्ग और उनकी सभी राजनीतिक पार्टियों की आम सहमति से नवउदारवादी आर्थिक नीतियाँ बेलगाम लागू होती रही हैं और आम लोगों पर कहर बरपा करती रही हैं। गाँवों में पूँजी की मार लगातार छोटे-मँझोले किसानों को उनकी जगह-ज़मीन से उजाड़कर सड़कों पर धकेलती रही है और उजरती गुलामों की क़तारों में इज़ाफ़ा करती रही है और किसानों की आत्महत्याओं के आँकड़े लगातार बढ़ते रहे हैं। महानगरों की सड़कों पर उमड़ते सर्वहाराओं के हुजूम को क़ाबू में रखने और बाहरी इलाकों में धकेलने के लिए पूँजीवादी सत्ता बर्बर हमलावरों की तरह उनकी झुग्गी-बस्तियों को उजाड़ती-जलाती और बुलडोज़रों से ज़मींदोज़ करती रही है। कारख़ानों में पचास-साठ रुपये दिहाड़ी पर बारह से चौदह घण्टों तक खटने वाले दिहाड़ी, अस्थायी और ठेका मज़दूरों का जीवन और अधिक नारकीय होता गया है। यहाँ-वहाँ उठ खड़े होने वाले मज़दूरों के स्वयंस्फूर्त संघर्ष अधिकांशतः या तो पराजित होते रहे हैं या फिर बर्बर दमन का शिकार होते रहे हैं। सरकार और बुर्जुआ नेता लगातार पड़ोसी “दुश्मन” देश और आतंकवाद के विरुद्ध जुनूनी अन्धराष्ट्रवादी नारे देते रहे हैं और हथियारों और क़ानूनों के सहारे असली लड़ाई, पहले की ही तरह, देश के भीतर देश की जनता के खिलाफ़ लड़ी जाती रही है।

गुज़रे हुए साल ने खाये-पिये, अघाये-मुटियाये ऊपर मध्य वर्ग और विशेष सुविधासम्पन्न बुद्धिजीवी समुदाय के मेहनतकश अवाग एवं जनसरोकारों के प्रति ऐतिहासिक विश्वासघात को थोड़ा और नंगा कर दिया है। दूसरी ओर, दशा-दिशा के हिसाब से निम्न मध्य वर्ग सर्वहारा वर्ग के जीवन और स्वप्नों-आकांक्षाओं के कुछ और निकट जा पहुँचा है। शिक्षा और स्वास्थ्य को सरकार की ज़िम्मेदारी के बजाय बाज़ार का बिकाऊ माल बना देने के लिए मनमोहन सिंह की सरकार ने 2006 में कुछ और महत्वपूर्ण प्रभावी क़दम उठाये,

पर इनका कोई संगठित कारगर प्रतिरोध सामने नहीं आया। जिस संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार ने उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को कुशल और कुटिल ढंग से लागू किया है, उसमें संसदीय वामपन्थी भी शामिल हैं। पूँजीवादी व्यवस्था की इस दूसरी सुरक्षा पंक्ति की अभी भी शासक वर्ग को ज़रूरत है। हुक्मरानों की फेंकी लाल मिर्ची खाकर संसदीय पिंजरे में फुदक-फुदककर नकली समाजवाद का गीत गाने वाले इन फ़रेबी तोतों की साख बचाने के लिए यह ज़रूरी था कि सरकार श्रमिकों के पक्ष में भी कुछ क़दम उठाने का दिखावा करे। ग्रामीण रोज़गार योजना का गुब्बारा इसीलिए फुलाया गया था। फ़िलहाल, दो सौ ज़िलों में ही इसे लागू किया गया, लेकिन इस ढकोसले की असलियत अभी ही उजागर हो चुकी है। 'बिगुल' के पन्नों पर इसके बारे में पहले लिखा जा चुका है। पिछले वर्ष असंगठित मज़दूरों को बुनियादी सामाजिक सुरक्षा (स्वास्थ्य, दुर्घटना, आकस्मिक मृत्यु आदि के लिए बीमा तथा वृद्धावस्था-पेंशन वगैरह) के नाम पर एक नया शूगाफा उछाला गया। इसके लिए एक राष्ट्रीय आयोग बनाया गया, जिसकी सिफ़ारिशें अब सरकार के विचाराधीन हैं। सरकार इन पर कब तक विचार करेगी और इन्हें किस रूप में लागू करेगी, यह कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि तब तक इस सरकार का कार्यकाल ही समाप्त हो जाये। इससे भी महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि उक्त आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर यदि कोई क़ानून बनेगा भी, तो सरकारी एजेंसियाँ उसे किस हद तक लागू करा पायेंगी! न्यूनतम मज़दूरी के बारे में, काम की स्थितियों एवं सुरक्षा-प्रबन्धों के बारे में, ठेका-प्रथा के बारे में, काम के घण्टों के बारे में, दुर्घटना के हरजाने के बारे में जो भी श्रम क़ानून आज देश में मौजूद हैं, वे कहीं भी लागू नहीं होते और उनसे सम्बन्धित शिकायतों की कहीं भी कोई सुनवाई नहीं है — इस नंगी सच्चाई को भला कौन नहीं जानता? असली बात यह है कि यह शोशा मुख्यतः नकली वामपन्थियों और ट्रेडयूनियनों के धन्धेबाज़ों की गिरती साख और खिसकती ज़मीन को बचाने की एक कोशिश है। आख़िर मनमोहन सरकार को बैसाखी का सहारा देने वाले तथा बंगाल और केरल में अनुकूलतम शर्तों पर मुनाफ़ा कूटने के लिए देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सादर न्यौताने वाले संसदीय वामपन्थियों को इज़्ज़त ढाँपने के लिए कम से कम एक चिथड़ा तो चाहिए था और एक चिथड़ा चाहिए था मज़दूरों के बीच जाकर दिखाने के लिए कि देखो, हम तुम्हारे लिए यह माँगकर लाये हैं और यदि तुम हंगामा खड़ा करने के बजाय सुशील और आज्ञाकारी बने रहोगे तो इसी तरह हम माँग-माँगकर और भी टुकड़े लाते रहेंगे जिनकी पैबन्दसाज़ी करके एक दिन समाजवाद का पूरा कोट तैयार हो जायेगा। पूँजीवादी व्यवस्था को आज भी वर्ग-संघर्ष की आँच पर सुधार के छींटे मारने के लिए संशोधनवादी राजनीति की ज़रूरत है, पर आज के पूँजीवाद की प्रकृति ही ऐसी है कि समाजवादी मुखौटे की असलियत छुपी नहीं रह पाती। मज़दूर वर्ग इन संसदीय वामपन्थियों को सुधारवादी-उदारवादी बुर्जुआ पार्टियों से अधिक कुछ नहीं समझता।

इस स्थिति में वर्ग-संघर्ष की आँच पर सुधार के छींटे मारने और तरह-तरह के दिग्भ्रम-विभ्रम-भटकाव पैदा करने के लिए विश्व पूँजीवाद के विश्वस्त सिद्धान्तकारों ने अपने चिन्तन-चातुर्य से एन.जी.ओ. राजनीति के रूप में पूँजीवादी व्यवस्था की एक और नयी सुरक्षा

पंक्ति तैयार की है। इस राजनीति के प्रमुख कार्यक्षेत्र भारत सहित तीसरी दुनिया के वे सभी अग्रणी देश हैं जहाँ श्रम शक्ति और प्राकृतिक सम्पदा को निचोड़ने की प्रचुर सम्भावनाएँ हैं, जहाँ देशी-पूँजी के विस्तार के साथ ही साम्राज्यवादी वित्तीय पूँजी भी बड़े पैमाने पर आ रही है, जहाँ तीव्र गति से समाज का पूँजीवादी रूपान्तरण और वर्गीय ध्रुवीकरण हो रहा है तथा जहाँ नयी सदी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों की ज़मीन तेज़ी से पक रही है। भारत के सुदूर कोनों तक विदेशी एजेंसियों और देशी पूँजीपतियों के ट्रस्टों के अनुदानों के सहारे काम करने वाले गैर-सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) अनेक रूपों में सक्रिय हैं। ये एन.जी.ओ. तरह-तरह की सुधार की कार्रवाइयाँ करते हैं, जनता की पहलकदमी से स्वास्थ्य-शिक्षा आदि का तन्त्र संगठित करने की आड़ लेकर सरकार को उसकी जिम्मेदारियों से पीछे हटने का अवसर देते हैं, जनता की विभिन्न माँगों को लेकर इस व्यवस्था के दायरे के भीतर आन्दोलन संगठित करते हुए 'सेफ्टीवॉल्व' की भूमिका निभाते हैं, जनता के विभिन्न वर्गों के एकजुट संघर्ष की धार व्यवस्था के विरुद्ध केन्द्रित होने से रोकने के लिए अलग-अलग आन्दोलनों का साझा मंच बनाते हैं, संघर्ष के बजाय विमर्श पर, वर्ग के बजाय राष्ट्रीय, जातीय, भाषाई, क्षेत्रीय, अल्पसंख्यक समुदायगत या लैंगिक पहचान की राजनीति (अस्मितावादी राजनीति) पर बल देते हैं तथा इन अस्मिताओं की सामाजिक वर्गीय संरचना में निहित आधारों को दृष्टिओझल या खारिज करने के लिए तरह-तरह के सिद्धान्त रचते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं कि मुम्बई में 'विश्व सामाजिक मंच' के मेले के बाद 2006 में एन.जी.ओ. के धन्धेबाज़ों ने एक बार फिर दिल्ली में 'भारतीय सामाजिक मंच' का तमाशा किया। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भारत के पुराने बुर्जुआ सुधारवादियों व सामाजिक जनवादियों-गाँधीवादियों, सर्वोदयियों, जयप्रकाश नारायण के चले-चाटियों तथा भाकपा-माकपा के संशोधनवादियों के साथ ही रिटायर्ड व पतित क्रान्तिकारी वामपन्थियों की एक बड़ी संख्या भी एन.जी.ओ. नेटवर्क में सक्रिय है और प्रायः पर्दे के पीछे के विचार-कक्षों और कमान-कार्यालयों में अहम भूमिका निभा रही है। ये एन.जी.ओ. जनता की भलाई करते हुए जीवनयापन करने का छलावा करते हुए लाखों नेकदिल बेरोज़गार नौजवानों को अपने जाल में फँसाते हैं तथा उन्हें बहुत कम वेतन देकर शिक्षा और स्वास्थ्य आदि के उपक्रमों में लगाकर पूँजीवादी सरकार का "बोझ" हल्का करते हैं। यही नहीं, सहकारिता की आड़ में विभिन्न उत्पादक उपक्रम संगठित करके ये बहुत कम मज़दूरी पर काम करके अतिलाभा भी निचोड़ते हैं और पूँजीवादी उत्पादन तन्त्र के एक पाये का काम करते हैं। ये अपनी कृतारों में उन युवाओं को भर्ती करते हैं जो क्रान्तिकारी कृतारों में शामिल होकर समाज का भविष्य बदल सकते हैं। ये ज़्यादातर उन्हीं असंगठित मज़दूरों-ग़रीबों के बीच काम करते हैं, जिनके बीच क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को काम करना है। इस तरह, आज एन.जी.ओ. संगठन पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति और सेफ्टीवॉल्व के रूप में सर्वाधिक प्रभावी भूमिका निभा रहे हैं। भारत में इनकी सक्रियता का दायरा और पैमाना लगातार विस्तारित हुआ है और यह सिलसिला पिछले वर्ष भी लगातार जारी रहा।

प्रतिक्रिया की विश्वव्यापी लहर के वस्तुगत और मनोगत कारण और इस गतिरोध से उबरने का रास्ता

गुजरे कई वर्षों की ही तरह पिछले वर्ष का भी बैलेंसशीट इसी कड़वी-नंगी सच्चाई की तसदीक करता है कि शोषण-दमन और उत्पीड़न की ताकतें प्रतिरोध की ताकतों पर हावी रही हैं। पूँजीवादी शोषण-दमन का तन्त्र और अधिक संगठित हुआ है, जबकि प्रतिरोध अभी भी असंगठित है, स्वयंस्फूर्त है तथा बिखरा हुआ है। गतिरोध और निराशा का माहौल है। तो फिर वे कोने कहाँ हैं, जहाँ से उम्मीद की किरणें फूटती हैं? वे ऊँचाइयाँ कहाँ हैं, जहाँ से नये क्रान्तिकारी भविष्य के क्षितिज दिखते हैं? निश्चय ही, यह इतिहास का अन्त नहीं है। सभ्यता की पूरी विकास यात्रा, सहस्राब्दियों से जारी वर्ग-संघर्ष वर्तमान पूँजीवादी असभ्यता के अनाचार-अत्याचार में ही समाप्त होने नहीं जा रही है। विश्व ऐतिहासिक स्तर पर सर्वहारा वर्ग और समाजवादी क्रान्तियों की पराजय के बाद, विश्व-शक्ति-सन्तुलन विगत लगभग तीन दशकों से पूँजीवाद के पक्ष में बना हुआ है। क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी बनी हुई है। पूँजी और श्रम के अन्तरविरोध के बीच पूँजी का पहलू प्रधान बना हुआ है। और विश्व पूँजीवाद के तमाम अन्दरूनी असाध्य अन्तरविरोधों और ढाँचागत संकट के बावजूद, सर्वहारा क्रान्ति की हरावल ताकतों की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, यही कहा जा सकता है कि पूरी दुनिया में यहाँ-वहाँ हो रहे और बढ़ते जा रहे जनसंघर्षों के विस्फोटों के बावजूद, अभी एक लम्बे समय तक शायद यही स्थिति बनी रहे, क्योंकि स्वयंस्फूर्त संघर्ष यथास्थिति को नहीं बदल सकते। उसे केवल संगठित नेतृत्व वाली सचेतन क्रान्तियाँ ही बदल सकती हैं। साम्राज्यवाद के वर्तमान दौर में, श्रम और पूँजी के स्पष्टतम-तीव्रतम ध्रुवीकरण के वर्तमान दौर में, केवल मार्क्सवादी विज्ञान के मार्गदर्शन में काम करने वाली सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में संगठित जनसंघर्ष ही विश्व पैमाने के अन्तरविरोध के प्रधान पहलू को फैसलाकुन ढंग से बदल सकते हैं। वस्तुगत परिस्थितियों की दृष्टि से, साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी सर्वहारा क्रान्तियों की सर्वाधिक उर्वर और सम्भावनासम्पन्न ज़मीन एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के उन पिछड़े पूँजीवादी देशों में है जहाँ प्राक्पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध मूलतः और मुख्यतः टूट चुके हैं और अवशेष-मात्र के रूप में मौजूद हैं, जहाँ पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध का वर्चस्व स्थापित हो चुका है, जहाँ की अर्थव्यवस्था विविधीकृत है, जहाँ बुनियादी एवं अवरचनागत उद्योगों सहित औद्योगिक उत्पादन का भारी विकास हुआ है तथा औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की भारी आबादी अस्तित्व में आ चुकी है, जहाँ गाँवों में पूँजी की व्यापक पैठ के साथ ही ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी की भी एक भारी संख्या पैदा हो चुकी है, जहाँ पूँजीवादी सामाजिक-सांस्कृतिक तन्त्र के विकास के चलते सर्वहारा क्रान्ति के सहयोगी शिक्षित निम्न-मध्य वर्ग और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी समुदाय का प्रचुर विकास हुआ है तथा जहाँ कुशल मज़दूरों एवं तकनीशियनों-वैज्ञानिकों के साथ ही विज्ञान-तकनोलॉजी के स्वतन्त्र विकास के लिए ज़रूरी मानव-उपादान मौजूद हैं। ऐसे अगली क़तार के क्रान्तिकारी सम्भावनासम्पन्न देशों में ब्राज़ील, अर्जेंटीना,

मेक्सिको, चीले, द. अफ्रीका, नाइजीरिया, मिस्त्र, ईरान, तुर्की, इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलीपींस आदि के साथ ही भारत भी शामिल है। (चीन, पूर्व सोवियत संघ के कुछ घटक देशों, और कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों में भी नयी क्रान्तियों की परिस्थितियाँ तेज़ी से तैयार हो रही हैं, जहाँ की जनता कभी समाजवादी क्रान्ति के प्रयोगों, परिणामों को देख चुकी है, पर इन देशों की स्थिति कुछ भिन्न है जो अलग से चर्चा का विषय है)।

समस्या यह है कि तीसरी दुनिया के जिन देशों में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नयी क्रान्तियों की जमीन तैयार है या हो रही है, वहाँ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्तियाँ बिखरी हुई हैं। वे देशस्तर की एक पार्टी के रूप में संगठित नहीं हैं और व्यापक जनता के बीच उनका आधार भी देशव्यापी नहीं है। इसका एक वस्तुगत कारण यह ज़रूर है कि सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच जारी विश्व ऐतिहासिक महासमर के पहले चक्र की समाप्ति और इसके दूसरे, निर्णायक चक्र की शुरुआत के बीच के अन्तराल में, प्रतिक्रिया की सभी शक्तियों ने क्रान्तिकारी शक्तियों को पीछे धकेलने-कुचलने के लिए अपनी सारी शक्ति झोंक दी है। अतीत की क्रान्तियों का शासक वर्गों ने भी समाहार किया है। हर देश की पूँजीवादी राज्यसत्ता अपने सामाजिक अवलम्बों के विकास के लिए पहले की अपेक्षा बहुत अधिक कुशलता से काम कर रही है और इसमें साम्राज्यवादी देशों और अन्तरराष्ट्रीय एजेंसियों से भी भरपूर सहायता मिल रही है। साथ ही, आज सिनेमा, टी.वी., और प्रिण्ट मीडिया सहित समस्त संचार माध्यमों का अभूतपूर्व प्रभावी इस्तेमाल पूँजीवादी संस्कृति एवं विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए, व्यापक जनसमुदाय की दिमागी गुलामी को लगातार खाद-पानी देने के लिए तथा कम्युनिज़्म, विगत सर्वहारा क्रान्तियों, उनके नेताओं और समाजवादी प्रयोगों के बारे में भ्रांति-भ्रांति के सफ़ेद झूठों का प्रचार करके उन्हें कलंकित-लांछित करने के लिए, विश्व-स्तर पर किया जा रहा है। इस ऐतिहासिक अन्तराल की वस्तुगत स्थिति का एक अहम पहलू यह भी है कि इसी दौरान विश्व पूँजीवाद की संरचना एवं कार्य-प्रणाली में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण बदलाव आये हैं, जिन्हें समझे बिना इक्कीसवीं शताब्दी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों की रणनीति एवं आम रणकौशल की कोई समझ बनायी ही नहीं जा सकती। इन वैश्विक बदलावों को समझकर विश्व सर्वहारा क्रान्ति की नयी आम दिशा निर्धारित करने के लिए आज न तो विश्व सर्वहारा का मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-माओ जैसा कोई मान्य नेतृत्व है, न ही सोवियत संघ और चीन जैसा कोई समाजवादी देश और वहाँ की अनुभवी पार्टियों जैसी कोई पार्टी है और न ही इण्टरनेशनल जैसा दुनियाभर की पार्टियों का कोई अन्तरराष्ट्रीय मंच है। ऐसी स्थिति में विश्व पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में, और साथ ही दुनिया के अधिकांश क्रान्तिकारी सम्भावनासम्पन्न देशों की राज्यसत्ताओं एवं सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में आये बदलावों को जान-समझकर क्रान्ति की मंज़िल और मार्ग को जानने-समझने का काम इन देशों के छोटे-छोटे गुप्त-संगठनों में बँटे-बिखरे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों को ही करना है। जो कम्युनिस्ट पार्टियाँ संशोधनवादी होकर संसद-मार्ग की राही बन चुकी हैं, वे क्रान्ति मार्ग पर कदापि वापस नहीं लौट सकतीं। वे पतित होकर बुर्जुआ पार्टियाँ बन चुकी हैं, जिनका काम समाजवाद का मुखौटा लगाकर मेहनतकश जनता को धोखा देना है और पूँजीवादी व्यवस्था

की दूसरी सुरक्षा पंक्ति की भूमिका निभाना है। विपरीततम वस्तुगत स्थितियों से जूझकर अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करणों का निर्माण वे क्रान्तिकारी ताकतें ही कर सकती हैं जो शान्तिपूर्ण संक्रमण के हर सिद्धान्त का और संशोधनवाद के हर रूप का विरोध करती हैं, जो वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व के सिद्धान्त को, बुर्जुआ राज्यसत्ता को बलपूर्वक चकनाचूर करके सर्वहारा राज्यसत्ता की स्थापना के सिद्धान्त को तथा पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने के लिए समाजवादी समाज में सर्वहारा वर्ग को सर्वतोमुखी अधिनायकत्व के अन्तर्गत नये-पुराने बुर्जुआ तत्त्वों, बुर्जुआ अधिकारों और बुर्जुआ विचारों के विरुद्ध सतत वर्ग-संघर्ष चलाने के उस सिद्धान्त को स्वीकार करती हैं जो माओ के नेतृत्व में चीन में सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के दौरान प्रतिपादित किया गया। लेकिन कम्युनिज़्म के इन क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को स्वीकारने वाले कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन अपनी तमाम ईमानदारी, बहादुरी और कुर्बानी के बावजूद और दुनिया के अधिकांश देशों में अपनी सक्रिय मौजूदगी के बावजूद, फ़िलहाल विचारधारात्मक रूप से काफ़ी कमज़ोर हैं। माओ के महान अवदानों को वैज्ञानिक भाव के बजाय वे भक्ति भाव से स्वीकार करते हैं। इसी कठमुल्लावाद के चलते वे क्रान्ति के कार्यक्रम के प्रश्न को भी प्रायः विचारधारा का प्रश्न बना देते हैं और माओ के विचारधारात्मक अवदानों को स्वीकारते हुए इस सीमा तक चले जाते हैं कि ऐसा मानने लगते हैं कि चूँकि माओ और चीन की पार्टी ने अपने समय में तीसरी दुनिया के देशों में साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी नवजनवादी क्रान्ति की बात कही थी, इसलिए हमें वैसा ही करना होगा। इससे अलग सोचना ही वे मार्क्सवाद से विचलन मानते हैं। ये कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन जीवन की ठोस सच्चाई को सिद्धान्तों के साँचे में फिट करने की कोशिश करते रहते हैं। यही कठमुल्लावाद है। इसी कठमुल्लावाद के चलते, साम्राज्यवाद की बुनियादी प्रकृति को समझकर आज उसकी कार्यप्रणाली एवं संरचना में आये बदलावों को समझने के बजाय अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन साम्राज्यवाद को हूबहू वैसा ही देखना चाहते हैं जैसा वह लेनिन के समय में था। वे राष्ट्रीय-औपनिवेशिक प्रश्न की समाप्ति के यथार्थ को, परजीवी, अनुत्पादक वित्तीय पूँजी के भारी विस्तार एवं निर्णायक वर्चस्व के यथार्थ को, राष्ट्रपारीय निगमों के बदलते चरित्र एवं कार्यप्रणाली और वित्तीय पूँजी के भूमण्डलीकरण के यथार्थ को, पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति में आये अहम बदलावों के यथार्थ को, भूतपूर्व उपनिवेशों में प्राकृ-पूँजीवादी सम्बन्धों की जगह पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों की प्रधानता तथा क्रान्ति के रणनीतिक संश्रय (वर्गों के संयुक्त मोर्चे) में परिवर्तन के यथार्थ को समझने की कोशिश करने के बजाय उनकी अनदेखी करते हैं। ऐसे में उनके क्रान्तिकारी सामाजिक प्रयोग मज़दूर वर्ग और सर्वहारा क्रान्ति के अन्य मित्र वर्गों को लामबन्द करने के बजाय प्रायः लकीर की फ़क़ीरी और रुटीनी क़वायद बनकर रह जाते हैं और कभी-कभी तो शासक वर्गों का कोई हिस्सा अपने आपसी संघर्षों में उनका इस्तेमाल भी कर लेता है। इस कठमुल्लावाद के चलते सामाजिक प्रयोगों की विफलता ने एक लम्बे गतिरोध और व्यापक मेहनतकश जनता से अलगाव की स्थिति पैदा की है। इस स्थिति में, दुनिया के सभी अग्रणी क्रान्तिकारी सम्भावना वाले देशों में न केवल देशस्तर की एकीकृत कम्युनिस्ट पार्टी के गठन का काम

लम्बित पड़ा हुआ है, बल्कि, कठमुल्लावाद और गतिरोध की लम्बी अवधि दक्षिणपन्थी और “वामपन्थी” अवसरवाद के विचारधारात्मक विचलनों को जन्म दे रही है। ने.क.पा. (माओवादी) के नेतृत्व में नेपाल की विजयोन्मुख जनवादी क्रान्ति का उदाहरण देते हुए दुनिया के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर में हावी कठमुल्लावादी सोच जोर-शोर से यह साबित करने की कोशिश करती है कि अभी भी तीसरी दुनिया के देशों में नवजनवादी क्रान्ति की धारा ही विश्व सर्वहारा क्रान्ति की मुख्य धारा और मुख्य कड़ी बनी हुई है। हम नेपाल के माओवादी क्रान्तिकारियों को (कुछ अहम विचारधारात्मक मतभेदों, आपत्तियों एवं आशंकाओं के बावजूद) हार्दिक इन्कलाबी सलामी देते हैं, लेकिन साथ ही, विनम्रतापूर्वक यह कहना चाहते हैं कि नेपाल की विजयोन्मुख क्रान्ति इक्कीसवीं सदी में होने वाली बीसवीं सदी की क्रान्ति है। यह इतिहास का एक ‘बैकलॉग’ है। यह इक्कीसवीं सदी की प्रवृत्ति-निर्धारक व मार्ग-निरूपक क्रान्ति नहीं है। नेपाल दुनिया के उन थोड़े से पिछड़े देशों में से एक है, जहाँ बहुत कम औद्योगिक विकास हुआ है और जहाँ प्राक्-पूँजीवादी भूमि सम्बन्ध मुख्यतः मौजूद हैं। भारत, ब्राज़ील, अर्जेंटीना, दक्षिण अफ्रीका आदि की ही नहीं बल्कि पाकिस्तान, श्रीलंका और बांग्लादेश जैसे देशों की स्थिति भी नेपाल से काफ़ी भिन्न है। आज तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में प्राक्पूँजीवादी भूमि सम्बन्ध मूलतः और मुख्यतः नष्ट हो चुके हैं। वहाँ पूँजीवादी विकास मुख्य प्रवृत्ति बन चुकी है। इन देशों का पूँजीपति वर्ग सत्तासीन होने के बाद साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपतियों का कनिष्ठ साझेदार बन चुका है। इन देशों की बुर्जुआ राज्यसत्ताएँ देशी पूँजीपति वर्ग के साथ ही साम्राज्यवादी शोषण का भी उपकरण बनी हुई हैं। इन देशों में साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी, नयी समाजवादी क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हुई है और यह विश्व पूँजीवाद के इतिहास के नये दौर की एक नयी विशिष्टता है। इस नयी ऐतिहासिक परिघटना की अन्देखी आज दुनिया के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की मुख्य समस्या है। जब तक यह समस्या हल नहीं होगी, तब तक विश्व सर्वहारा क्रान्ति की नयी लहर आगे की ओर गतिमान नहीं हो सकती।

भारत में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर – गतिरोध से विघटन तक की यात्रा के आवश्यक सबक : आन्दोलन की विचारधारात्मक-राजनीतिक समस्याओं-कमज़ोरियों का एक संक्षिप्त विश्लेषण एवं समाहार तथा नयी समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम और पार्टी निर्माण के कार्यभार के बारे में कुछ बुनियादी बातें

भारत में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के ठहराव-बिखराव की वर्तमान स्थिति को भी हमें इसी वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखना-समझना होगा। गतिरोध के कारणों को सही-सटीक ढंग से समझे बिना उसे तोड़ा नहीं जा सकता।

नक्सलवाड़ी का ऐतिहासिक किसान उभार भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास का एक मोड़ बिन्दु था। क्रान्तिकारी क़तारों ने भाकपा और माकपा के संशोधनवादी नेतृत्व से निर्णायक विच्छेद करके एक नयी सर्वभारतीय क्रान्तिकारी पार्टी के गठन की दिशा में आगे क़दम बढ़ाये। लेकिन इस प्रक्रिया के अंजाम तक पहुँचने के पहले ही नये नेतृत्व की

विचारधारात्मक अपरिपक्वता के कारण जल्दी ही पेण्डुलम दूसरे छोर पर जा पहुँचा और नवोदित कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रमुख हिस्सा “वामपन्थी” दुस्साहसवाद के दलदल में जा धँसा। 1970 में “वामपन्थी” दुस्साहसवाद के इसी भटकाव के साथ भा.क. पा. (मा.ले.) अस्तित्व में आयी। “वामपन्थी” दुस्साहसवाद की पहुँच पद्धति लाज़िमी तौर पर हर मामले में कठमुल्लावादी होती है। इसी कठमुल्लावाद के चलते भा.क.पा. (मा-ले) के नेतृत्व ने अपने देश की ठोस परिस्थितियों के ठोस विश्लेषण के आधार पर 1947 के बाद भारतीय समाज के विकास की दिशा, उत्पादन-सम्बन्ध और भारतीय शासक वर्ग एवं राज्यसत्ता के चरित्र के सही-सटीक विश्लेषण के आधार पर भारतीय क्रान्ति का कार्यक्रम तय करने के बजाय, चीनी क्रान्ति के कार्यक्रम की कार्बन कापी कर लेने का सुगम-सुविधाजनक रास्ता चुना। मा-ले आन्दोलन की जिस उपधारा ने “वामपन्थी” दुस्साहसवाद का विरोध करते हुए क्रान्तिकारी जनदिशा के प्रति अपनी निष्ठा ज़ाहिर की, उसने भी कार्यक्रम के प्रश्न पर कठमुल्लावादी रवैया अपनाया और भारतीय समाज में पूँजीवादी विकास की सच्चाई की अनदेखी करते हुए नवजनवादी क्रान्ति का ही कार्यक्रम अपनाया।

भा.क.पा. (मा.ले.) में फूट दर फूट की जो प्रक्रिया 1971 में शुरू हुई, वह आज तक जारी है। बीच-बीच में एकता-प्रयास भी होते रहे और हर एकता कई फूटों को जन्म देती रही। भा.क.पा. (मा.ले.) के “वामपन्थी दुस्साहसवाद” का विरोध करने वाली धारा भी कार्यक्रम की ग़लत समझदारी के चलते गतिरोध का शिकार हो गयी और फूट दर फूट एवं विघटन की प्रक्रिया से अपने को बचा नहीं पायी। जिन संगठनों ने आतंकवादी लाइन से साहसिक निर्णायक विच्छेद के बजाय इंच-इंच करके अवसरवादी ढंग से उससे पीछा छुड़ाने की कोशिश की, वे सभी आज दक्षिणपन्थी अवसरवाद के दलदल में धँसे हुए हैं। सबसे लेकर आज तक छत्तीस वर्षों का समय गुज़र चुका है। लम्बे ठहराव ने पूरे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर को आज विघटन के मुक़ाम तक ला पहुँचाया है। कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन संसदीय मार्ग के राही बनकर भूतपूर्व कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी बन चुके हैं। शेष ऐसे हैं जो क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष की दुहाई देते हुए राजनीतिक-सांगठनिक व्यवहार के धरातल पर ग़लीज़ सामाजिक-जनवादी आचरण कर रहे हैं तथा अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद की गटर-गंगा में गोते लगा रहे हैं, अपनेआप को माओवादी कहने वाले “वामपन्थी” दुस्साहसवादी अपनी राह पर अब इतना आगे, और मार्क्सवाद से इतना दूर जा चुके हैं कि उनकी वापसी सम्भव नहीं दिखती।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन यदि विचारधारात्मक कमज़ोरी और अधकचरेपन का शिकार नहीं होता तो भारतीय समाज के पूँजीवादी रूपान्तरण की प्रक्रिया को गत शताब्दी के सातवें-आठवें दशक में ही समझकर समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम के नतीजे तक पहुँच सकता था। और अब तो भारतीय समाज का पूँजीवादी चरित्र इतना स्पष्ट हो चुका है कि कठमुल्लेपन से मुक्त कोई नौसिखुआ मार्क्सवादी भी इसे देख-समझ सकता है। गाँवों के छोटे और मँझोले किसान आज अपनी ज़मीन के मालिक खुद हैं और सामन्ती लगान और उत्पीड़न नहीं, बल्कि पूँजी की मार उनको लगातार जगह-ज़मीन से उजाड़कर दर-ब-दर कर रही है।

किसान आबादी के विभेदीकरण और सर्वहाराकरण की प्रक्रिया एकदम स्पष्ट है। सालाना लाखों छोटे और निम्न मध्यम किसान उजड़कर सर्वहारा की कृतारों में शामिल हो रहे हैं। धनी और उच्च मध्यम किसान बाज़ार के लिए पैदा कर रहे हैं और खेतों में भाड़े के मज़दूर लगाकर अधिशेष निचोड़ रहे हैं। गाँवों में अनेकशः नये रास्तों और तरीकों से वित्तीय पूँजी की पैठ बढ़ी है और देश के सुदूरवर्ती हिस्से भी एक राष्ट्रीय बाज़ार की चौहद्दी के भीतर आ गये हैं। गाँव के धनी और खुशहाल मध्यम किसान आज क्रान्तिकारी भूमि-सुधार के लिए नहीं बल्कि निचोड़े जाने वाले अधिशेष में अपनी भागीदारी बढ़ाने को लेकर आन्दोलन करते हैं। कृषि-लागत कम करने और कृषि-उत्पादों के लाभकारी मूल्यों की माँग की यही अन्तर्वस्तु है, इसे मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र का एक सामान्य विद्यार्थी भी समझ सकता है। देश के पुराने औद्योगिक केन्द्रों को पीछे छोड़ते हुए आज सुदूरवर्ती कोनों तक लाखों की आबादी वाले नये-नये औद्योगिक केन्द्र विकसित हो गये हैं। यातायात-संचार के साधनों का विगत तीन दशकों के दौरान अभूतपूर्व तीव्र गति से विकास हुआ है। आँखें खोल देने के लिए मात्र यह एक तथ्य ही काफ़ी है कि पूरे देश के संगठित-असंगठित, ग्रामीण व शहरी सर्वहारा की आबादी आज पचास करोड़ के आसपास पहुँच रही है और इसमें यदि अर्द्धसर्वहाराओं की आबादी भी जोड़ दी जाये तो यह संख्या कुल आबादी के आधे को भी पार कर जायेगी। यह किसी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था या अर्द्धसामन्ती उत्पादन-सम्बन्धों के दायरे में क़तई सम्भव नहीं हो सकता था। आज का भारत न केवल क्रान्तिपूर्व चीन से सर्वथा भिन्न है, बल्कि वह 1917 के रूस से भी कई गुना अधिक पूँजीवादी है। आज के भारत में केवल पूँजीवाद-विरोधी समाजवादी क्रान्ति की बात ही सोची जा सकती है। जहाँ तक साम्राज्यवाद का प्रश्न है, भारत जैसे सभी उत्तर-औपनिवेशिक, पिछड़े पूँजीवादी देश साम्राज्यवादी शोषण और लूट के शिकार हैं। हम आज भी साम्राज्यवाद के युग में ही जी रहे हैं, लेकिन साम्राज्यवादी शोषण की प्रकृति आज उपनिवेशों और नवउपनिवेशों के दौर से सर्वथा भिन्न है। भारतीय पूँजीपति वर्ग आज देशी बाज़ार पर अपना निर्णायक वर्चस्व स्थापित करने के लिए राज्यसत्ता पर कब्ज़ा की लड़ाई नहीं लड़ रहा है। राज्यसत्ता पर तो वह 1947 से ही क़ाबिज़ है। अब उसकी मुख्य लड़ाई देश की मेहनतकश आबादी और आम जनता के विरुद्ध है लेकिन उद्योगों और बाज़ार के विकास के लिए उसे पूँजी और तकनोलॉजी की दरकार है, इसके लिए ज़रूरी है कि वह साम्राज्यवादियों के साथ समझौता करे और उन्हें भी लूटने का मौक़ा दे। साथ ही, उसे अपने उत्पादित माल के लिए तथा तकनोलॉजी, तेल व अन्य ज़रूरतों के लिए विश्व बाज़ार की भी ज़रूरत है। यह ज़रूरत भी उसे विश्व बाज़ार के चौधरियों के आगे झुकने के लिए विवश करती है। अपनी इन्हीं ज़रूरतों और विवशताओं के चलते भारतीय पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद के सामने झुककर समझौते करता है और उनके साथ मिलकर भारतीय जनता का शोषण करता है। ऐसा करते हुए वह साम्राज्यवादियों से निचोड़े गये कुल अधिशेष में अपनी भागीदारी बढ़ाने को लेकर मोलतोल भी करता है और दबाव भी बनाता है, लेकिन उसकी यह लड़ाई राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई नहीं बल्कि बड़े लुटेरों से अपना हिस्सा बढ़ाने की छोटे लुटेरे की लड़ाई मात्र है। अपनी इस लड़ाई में भारतीय

पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवादी लुटेरों की आपसी होड़ का भी यथासम्भव लाभ उठाने की कोशिश करता है। आज़ादी के बाद के तीन दशकों तक, जनता से पाई-पाई निचोड़कर, समाजवाद के नाम पर राजकीय पूँजीवाद का ढाँचा खड़ा करके उसने साम्राज्यवादी दबाव का एक हद तक मुक़ाबला किया। लेकिन देशी निजी पूँजी की ताक़त बढ़ने के साथ ही, निजीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत हुई और फिर एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में अलग-अलग पूँजीपतियों ने विदेशी कम्पनियों से पूँजी और तकनोलॉजी लेने के लिए सरकार पर दबाव बनाना शुरू किया। इसके चलते उदारीकरण की प्रक्रिया तेज़ हुई। निजीकरण-उदारीकरण के इस नये दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था पर साम्राज्यवादी पूँजी का दबाव बहुत अधिक बढ़ा है, लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं कि उपनिवेशवाद की वापसी हो रही है। ऐसा सोचना भारतीय पूँजीपति वर्ग की स्थिति और शक्ति को नहीं समझ पाने का नतीजा है। भारतीय पूँजीपति वर्ग विश्व पैमाने के अधिशेष विनियोजन में साम्राज्यवादी शक्तियों के कनिष्ठ साझेदारों की पंगत में बैठकर इस देश की राज्यसत्ता पर क़ाबिज़ बना हुआ है और उसकी राज्यसत्ता साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए भी वचनबद्ध है। साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा अब जनता के अन्य वर्गों का रणनीतिक सहयोगी नहीं बन सकता। यानी साम्राज्यवाद-विरोध का प्रश्न आज राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न न रहकर देशी पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के विरुद्ध संघर्ष का ही एक अविभाज्य अंग बन गया है। भारत जैसे भूतपूर्व उपनिवेशों में आज एक सर्वथा नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति की – साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हुई है। इस नयी स्थिति को समझे बिना भारतीय जनता की मुक्ति के उपक्रम को एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

लेकिन ऐसा करने के बजाय, भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन आज कर क्या रहे हैं? कुछ तो ऐसे छोटे-छोटे संगठन हैं जो कोई भी व्यावहारिक कार्रवाई करने के बजाय सालभर में मुखपत्र के एकाध अंक निकालकर और कुछ संगोष्ठी-सम्मेलन करके बस अपने ज़िन्दा होने का प्रमाण पेश करते रहते हैं। उनकी तो चर्चा ही बेकार है। कुछ ऐसे हैं जो देश की पचास करोड़ सर्वहारा आबादी को छोड़कर मालिक किसानों की लागत मूल्य कम करने और लाभकारी मूल्य तय करने की माँग को लेकर आन्दोलनों में लगे रहते हैं और व्यवहारतः सर्वहारा वर्ग के ही हितों पर कुठाराघात करते हुए, छोटे और मँझोले मालिक किसानों को भी धनी किसानों के आन्दोलनों का पुछल्ला बनाकर नरोदवाद के विकृत भारतीय संस्करण प्रस्तुत करते रहते हैं। ये लोग वस्तुतः कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नहीं बल्कि “माक्सवादी” नरोदवादी हैं। कृषि और कृषि से जुड़े उद्योगों की भारी ग्रामीण सर्वहारा आबादी को संगठित करने तथा राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के द्वारा गाँव के ग़रीबों व छोटे किसानों को समाजवाद के झण्डे तले संगठित करने की कोशिशें कोई संगठन नहीं कर रहा है। इसके बजाय, यहाँ-वहाँ, सर्वोदयियों की तरह, भूमिहीनों के बीच पट्टा-वितरण जैसी माँग उठाकर कुछ संगठन ग्रामीण सर्वहारा में ज़मीन के निजी मालिकाने की भूख पैदा करके उन्हें समाजवाद के झण्डे के खिलाफ़ खड़ा करने का प्रतिगामी काम ही कर रहे हैं। औद्योगिक

सर्वहारा वर्ग के बीच किसी भी मा.ले. संगठन की कोई प्रभावी पैठ-पकड़ आज तक नहीं बन पायी है। कुछ संगठन औद्योगिक सर्वहारा वर्ग में काम करने के नाम पर केवल मज़दूर वर्ग के कारखाना-केन्द्रित आर्थिक संघर्षों तक ही अपने को सीमित रखे हुए हैं और अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद की धिनौनी बानगी पेश कर रहे हैं। मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार कार्य, उनके बीच से पार्टी-भर्ती और राजनीतिक माँगों के इर्द-गिर्द व्यापक मज़दूर आवादी को लामबन्द करने का काम उनके एजेण्डे पर है ही नहीं। मज़दूर वर्ग के बीच जनकार्य और पार्टी कार्य विषयक लेनिन की शिक्षाओं के एकदम उलट, ये संगठन मंशेविकों से भी कई गुना अधिक घटिया सामाजिक जनवादी आचरण कर रहे हैं। भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम की ग़लत समझ के कारण, भारत का कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन शासक वर्गों की आपसी मोल-तोल में, वस्तुगत तौर पर, बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो रहा है। जब कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन ज़ोर-शोर से कृषि-लागत कम करने और लाभकारी मूल्य की लड़ाई लड़ते हैं तो पूँजीपति वर्ग के साथ मोल-तोल में धनी किसानों के हाथों बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो जाते हैं। जब वे साम्राज्यवाद का विरोध करते हुए राष्ट्रीय मुक्ति का नारा देते हैं तो साम्राज्यवादियों और भारतीय पूँजीपतियों के आपसी बाँट-बखरे में भारतीय पूँजीपतियों के बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो जाते हैं।

कुछ संगठन किताबी फ़ार्मूले की तरह समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम को स्वीकार करते हैं, लेकिन इनमें से कुछ अपनी ग़ैर-बोल्शेविक सांगठनिक कार्यशैली के कारण जनदिशा को लागू कर पाने में पूरी तरह से विफल रहे हैं और निष्क्रिय उग्रपरिवर्तनवाद का शिकार होकर आज एक मठ या सम्प्रदाय में तब्दील हो चुके हैं। दूसरे कुछ ऐसे हैं जो मज़दूर वर्ग में काम करने के नाम पर केवल अर्थवादी और लोकरंजकतावादी आन्दोलनपन्थी क़वायद करते रहते हैं। भूमि-प्रश्न पर इनकी समझ के दिवालियेपन का आलम यह है कि कृषि के लागत मूल्य को घटाने की माँग को ये समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम की एक रणनीतिक माँग मानते हैं।

अपने-आप को माओवादी कहने वाले जो “वामपन्थी” दुस्साहसवादी देश के सुदूर आदिवासी अंचलों में निहायत पिछड़ी चेतना वाली जनता के बीच “मुक्तक्षेत्र” बनाने का दावा करते हैं और लाल सेना की सशस्त्र कार्रवाई के नाम पर कुछ आतंकवादी कार्रवाइयाँ करते रहते हैं, वे भी देश के अन्य विकसित हिस्सों में पूरी तरह से “मार्क्सवादी” नरोदवादी आचरण करते हुए मालिक किसानों की लागत मूल्य-लाभकारी मूल्य की माँगों पर छिटपुट आन्दोलन करते रहते हैं और यहाँ-वहाँ कुछ औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूरों के बीच काम के नाम पर जुझारू अर्थवाद की विकृत बानगी प्रस्तुत करते रहते हैं।

निचोड़ के तौर पर कहा जा सकता है कि तीन दशकों से भी अधिक समय से, एक ग़लत कार्यक्रम पर अमल की आधी-अधूरी कोशिशों और एक ग़ैर-बोल्शेविक सांगठनिक कार्यशैली पर अमल ने भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के पहले से ही कमज़ोर विचारधारात्मक आधार को लगातार ज़्यादा से ज़्यादा कमज़ोर बनाया है और उनके भटकानों को क्रान्तिकारी चरित्र के क्षरण-विघटन के मुक़ाम तक ला पहुँचाया है। अधिकांश

संगठनों के नेतृत्व राजनीतिक अवसरवाद का शिकार हैं। वे सर्वभारतीय पार्टी खड़ी करने के प्रश्न पर संजीदा नहीं हैं और बौद्ध भिक्षुओं की तरह रुटीनी कामों का घण्टा बजाते हुए वक्त काट रहे हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो वे ज़रूर सोचते कि छत्तीस वर्षों से जारी ठहराव और बिखराव के कारण सर्वथा बुनियादी हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो जूते के हिसाब से पैर काटने के बजाय वे भारतीय समाज के पूँजीवादी रूपान्तरण का अध्ययन करके कार्यक्रम के प्रश्न पर सही नतीजे तक पहुँचने की कोशिश ज़रूर करते और कठदलीली या उपेक्षा का रवैया अपनाने के बजाय समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल के पक्ष में दिये जाने वाले तर्कों पर संजीदगी से विचार ज़रूर करते। बहरहाल, केन्द्रीय प्रश्न आज कार्यक्रम के प्रश्न पर मतभेद का रह ही नहीं गया है। अब मूल प्रश्न विचारधारा का हो गया है। ज़्यादातर संगठनों ने बोल्शेविक सांगठनिक उसूलों और कार्यप्रणाली को तिलांजलि दे दी है, उनका आचरण एकदम खुली सामाजिक जनवादी पार्टियों जैसा ही है तथा पेशेवर क्रान्तिकारी या पार्टी सदस्य के उनके पैमाने बेहद ढीले-ढाले हैं। यदि कोई संगठन विचारधारात्मक कमज़ोरी के कारण लम्बे समय तक सर्वहारा वर्ग के बीच काम ही नहीं करेगा, या फिर लम्बे समय तक अर्थवादी ढंग से काम करेगा तो कालान्तर में विच्युति भटकाव का और फिर भटकाव विचारधारा से प्रस्थान का रूप ले ही लेगा और वह संगठन लाज़िमी तौर पर संशोधनवाद के गड्डे में जा गिरेगा। यदि कोई संगठन कार्यक्रम की अपनी ग़लत समझ के कारण लम्बे समय तक मालिक किसानों की माँगों के लिए लड़ता हुआ परोक्षतः सर्वहारा वर्ग के हितों के विरुद्ध खड़ा होता रहेगा तो कालान्तर में वह एक ऐसा नरोदवादी बन ही जायेगा, जिसके ऊपर बस मार्क्सवादी का लेबलभर चिपका हुआ होगा। यानी, विचारधारात्मक कमज़ोरी के चलते भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम की सही समझ तक नहीं पहुँच सके और अब, लम्बे समय तक ग़लत कार्यक्रम के आधार पर राजनीतिक व्यवहार ने उन्हें विचारधारा का ही परित्याग करने के मुक़ाम तक ला पहुँचाया है। किसी भी यथार्थवादी व्यक्ति को अब इस खोखली आशा का परित्याग कर देना चाहिए कि मा.ले. शिविर के घटक संगठनों के बीच राजनीतिक वाद-विवाद और अनुभवों के आदान-प्रदान के आधार पर एकता कायम हो जायेगी और सर्वहारा वर्ग की एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी पार्टी अस्तित्व में आ जायेगी। जो छत्तीस वर्षों में नहीं हो सका, वह अब नहीं हो सकता। यदि होना ही होता तो यह गत शताब्दी के सातवें या आठवें दशक तक ही हो गया होता। अब कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की इन संरचनाओं को यदि किसी चमत्कार से एक साथ मिला भी दिया जाये तो देशस्तर की एक बोल्शेविक पार्टी की संरचना नहीं बल्कि एक ढीली-ढाली मेशेविक पार्टी जैसी संरचना ही तैयार होगी। और सबसे प्रमुख बात तो यह है कि इन संगठनों के अवसरवादी नेतृत्व से अब यह उम्मीद पालना ही व्यर्थ है। जहाँ तक जुनूनी आतंकवादी धारा की बात है तो उनकी दुस्साहसवादी रणनीति दुर्गम जंगल-पहाड़ों और बेहद पिछड़े क्षेत्रों के बाहर लागू ही नहीं हो पायेगी और अन्य क्षेत्रों में वे कुलकों की माँग उठाते हुए नरोदवादी अमल करते रहेंगे, मज़दूरों के बीच अर्थवाद करते रहेंगे और शहरों में बुद्धिजीवियों का तुष्टीकरण करते हुए उनका दुमछल्ला बनकर सामाजिक जनवादी आचरण करते रहेंगे। इस सतमेल खिचड़ी

की हाँड़ी बहुत देर आँच पर चढ़ी नहीं रह सकती। कालान्तर में, इस धारा का विघटन अवश्यम्भावी है। इससे छिटकी कुछ धाराएँ भा.क.पा. (मा.ले.) (लिबरेशन) की ही तरह सीधे संशोधनवाद का रास्ता पकड़ सकती हैं और मुमकिन है कि कोई एक या कुछ धड़े “वामपन्थी” दुस्साहसवाद के परचम को उठाये हुए इस या उस सुदूर कोने में अपना अस्तित्व बनाये रखें या फिर शहरी आतंकवाद का रास्ता पकड़ लें। भारत में पूँजीवादी विकास जिस बर्बरता के साथ मध्यवर्ग के निचले हिस्सों को भी पीस और निचोड़ रहा है, उसके चलते, खासकर निम्न मध्यवर्ग से, विद्रोही युवाओं का एक हिस्सा आत्मघाती उतावलेपन के साथ, व्यापक मेहनतकश जनता को जागृत व लामबन्द किये बिना, स्वयं अपने साहस और आतंक एवं षड्यन्त्र की रणनीति के सहारे आनन-फ़ानन में क्रान्ति कर देने के लिए मैदान में उतरता रहेगा। निम्न पूँजीवादी क्रान्तिवाद की यह प्रवृत्ति लातिन अमेरिका से लेकर यूरोप तक के सापेक्षतः पिछड़े पूँजीवादी देशों में एक आम प्रवृत्ति के रूप में मौजूद है। विश्व सर्वहारा आन्दोलन के उद्भव से लेकर युवावस्था तक, यूरोप में (और रूस में भी) कम्युनिस्ट धारा की पूर्ववर्ती एवं सहवर्ती धारा के रूप में निम्न-पूँजीवादी क्रान्तिवाद की यह प्रवृत्ति मौजूद थी और मज़दूरों के एक अच्छे-खासे हिस्से पर इनका भी प्रभाव मौजूद था। आश्चर्य नहीं कि आने वाले दिनों में भारत में भी क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के साथ-साथ मध्यवर्गीय क्रान्तिवाद की एक या विविध धाराएँ मौजूद रहें और (कोलम्बिया या अन्य कई लातिन अमेरिकी देशों के सशस्त्र ग्रुपों की तरह) उनमें से कई अपने को मार्क्सवादी या माओवादी भी कहते रहें। लेकिन समय बीतने के साथ ही मार्क्सवाद के साथ उनका दूर का रिश्ता भी बना नहीं रह पायेगा।

जहाँ तक क़तारों की बात है, यह सही है कि आज भी क्रान्तिकारी क़तारें मुख्यतः मा.ले. संगठनों के तहत ही संगठित हैं। पर ग़ैर-बोल्शेविक ढाँचों वाले मा.ले. संगठनों में उन्हें मार्क्सवादी विज्ञान से शिक्षित नहीं किया गया है और स्वतन्त्र पहलक़दमी के साहस व निर्णय लेने की क्षमता का भी उनमें अभाव है। विभिन्न संगठनों में समय काटते हुए उनकी कार्यशीली भी सामाजिक जनवादी प्रदूषण का शिकार हो रही है और निराशा का दीमक उनके भीतर भी पैठा हुआ है। उनके राजनीतिक-सांगठनिक जीवन के व्यवहार ने उन्हें स्वतन्त्र एवं निर्णय लेने की क्षमता से लैस वह साहसिक चेतना और समझ नहीं दी है कि वे महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की सच्ची माओवादी स्पिरिट में ‘विद्रोह न्यायसंगत है’ के नारे पर अमल करते हुए अवसरवादी नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह कर दें और अपनी पहल पर कोई नयी शुरुआत कर सकें। लेकिन जो क़तारें सैद्धान्तिक मतभेदों और विवादों की जटिलताओं को नहीं समझ पाती हैं, उनके सामने यदि कोई सही लाइन व्यवहार में, निरन्तरता और सुसंगति के साथ, लागू होती और आगे बढ़ती दिखायी देती है तो फिर निर्णय तक पहुँचने में वे ज़रा भी देर नहीं करतीं। आगे भी ऐसा ही होगा।

इतिहास और वर्तमान के इसी विश्लेषण-आकलन के आधार पर हमारा यह मानना है कि भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन का जो चरण नक्सलवाड़ी से शुरू हुआ था, वह कमोबेश गत शताब्दी के नवें दशक तक ही समाप्त हो चुका था। हमें आज के समय को उस दौर

की निरन्तरता के रूप में नहीं, बल्कि उसके उत्तरवर्ती दौर के रूप में देखना होगा, यानी निरन्तरता और परिवर्तन के ऐतिहासिक द्वन्द्व में आज हमारा ज़ोर परिवर्तन के पहलू पर होना चाहिए। निस्सन्देह नक्सलबाड़ी और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की विरासत को हम स्वीकार करते हैं और उसके साथ एक आलोचनात्मक सम्बन्ध निरन्तर बनाये रखते हैं, लेकिन हमारे लिए वह अतीत की विरासत है, हमारा वर्तमान नहीं है। आज भावी भारतीय सर्वहारा क्रान्ति का हरावल दस्ता इस अतीत की राजनीतिक संरचनाओं को जोड़-मिलाकर संघटित नहीं किया जा सकता क्योंकि ये राजनीतिक संरचनाएँ अपनी बोल्शेविक स्पिरिट और चरित्र, मुख्य रूप से, ज़्यादातर मामलों में, खो चुकी हैं। यानी एक एकीकृत पार्टी बनाने की प्रक्रिया का प्रधान पहलू आज बदल चुका है। आज कार्यक्रम व नीति विषयक मतभेदों को हल करके विभिन्न क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों के ढाँचों को एक एकीकृत पार्टी के ढाँचे में विलीन कर देने का सवाल ही नहीं रह गया है, बल्कि प्रधान प्रश्न क्रान्तिकारी बोल्शेविक उसूलों एवं चरित्र वाले संगठन का ढाँचा नये सिरे से बनाने का प्रश्न बन गया है। यानी क्लासिकीय लेनिनवादी शब्दावली में कहें तो, प्रधान पहलू पार्टी-गठन का नहीं बल्कि पार्टी-निर्माण का है। जिसे अब तक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता रहा है, वह, मूलतः और मुख्यतः विघटित हो चुका है। अब इस शिविर के नेतृत्व से 'पॉलिमिक्स' के जरिये पार्टी-पुनर्गठन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। बेशक जनमानस को प्रभावित करने वाले किसी भी विचार की आलोचना और उसके साथ बहस का काम तो होता ही रहता है और इससे क्रान्तिकारी कृतारों की वैचारिक-राजनीतिक शिक्षा भी होती रहती है, लेकिन ऐसी राजनीतिक बहसों का लक्ष्य आज किसी संगठन के साथ एकता बनाना नहीं हो सकता। हम आज ऐसी अपेक्षा नहीं कर सकते।

सांगठनिक-राजनीतिक कार्य-योजना की आम दिशा और हमारे कार्यभार

हमें, सारे भ्रमों से मुक्त होकर, पार्टी-निर्माण के काम को साहसपूर्वक हाथ में लेना होगा। हमें नयी समाजवादी क्रान्ति के परचम को उठाकर, भारतीय सर्वहारा वर्ग के सभी हिस्सों के बीच उन साहसी क्रान्तिकारियों की टीम को लेकर जाना होगा, जिन्होंने अब तक धारा के विरुद्ध जूझते हुए अपने बोल्शेविक साहस को खरा सिद्ध किया है। हमें सभी दिशाओं में, जनता के सभी हिस्सों के बीच जाना होगा और क्रान्तिकारी प्रोपेगैण्डा एवं एजिटेशन की घनीभूत, जुझारू और निरन्तर कार्रवाई चलाते हुए उन्नत चेतना के युवाओं के बीच से पेशेवर क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं की भर्ती पर, फ़िलहाल विशेष ज़ोर देना होगा, क्योंकि सक्षम संगठनकर्ताओं की बेहद कमी है और देश के लाखों मेहनतकश और मध्यवर्गीय युवाओं के बीच आज क्रान्तिकारी भर्ती की प्रचुर सम्भावनाएँ मौजूद हैं और आने वाले दिनों में ये सम्भावनाएँ बढ़ती ही चली जायेंगी।

हमें समूचे सर्वहारा वर्ग को ही संगठित करना होगा, लेकिन शुरुआती दौर में ग्रामीण सर्वहारा के बजाय हमें औद्योगिक सर्वहारा वर्ग पर केन्द्रित करना होगा और उसमें भी पहले

हमें, स्थायी नौकरी, बेहतर वेतन और बेहतर जीवन वाले सापेक्षतः सफ़ेदपोश मज़दूरों की छोटी-सी आबादी के बजाय झुग्गी बस्तियों में रसातल का जीवन जीने और अस्तित्व की लड़ाई लड़ने वाली उस बहुसंख्यक, असंगठित सर्वहारा आबादी पर केन्द्रित करना होगा जो अपनी उन्नत चेतना और बड़े आधुनिक उद्योगों में काम करने के बावजूद, दिहाड़ी, अस्थायी या ठेका मज़दूर के रूप में पचास-साठ रुपये की दिहाड़ी पर दस-दस, बारह-बारह घण्टे तक काम करती है और जिसे कोई भी सुविधा या सामाजिक सुरक्षा हासिल नहीं होती। यह आबादी कुल औद्योगिक सर्वहारा आबादी के 80 फ़ीसदी के आसपास है। ग्रामीण और शहरी, कुल सर्वहारा आबादी में असंगठित मज़दूरों की संख्या 95 प्रतिशत के आसपास है। ये असंगठित मज़दूर छोटे-छोटे वर्कशापों में उन्नीसवीं शताब्दी में काम करने वाले यूरोपीय मज़दूरों के समान असंगठित नहीं हैं। ये प्रायः उन्नत तकनोलॉजी वाले आधुनिक कारख़ानों में काम करते हैं और उन्नत पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों में उजरती गुलाम के रूप में भागीदारी के चलते इनकी चेतना अत्यधिक उन्नत है। ये असंगठित मात्र इसलिए हैं कि इनकी नौकरी स्थायी नहीं होती और प्रायः ये सफ़ेदपोश मज़दूरों की तरह संशोधनवादी और बुर्जुआ पार्टियों के नेतृत्व वाली यूनियनों में संगठित नहीं हैं। इनके बीच काम करने की सबसे बड़ी समस्या है, इनके काम के घण्टे और लगातार सिर पर टँगी रोज़गार-असुरक्षा की तलवार। पर यह कोई असाध्य समस्या नहीं है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि यूरोप में जब मज़दूरों के बीच उन्नीसवीं शताब्दी में ट्रेडयूनियन कार्यों और राजनीतिक कार्यों की शुरुआत हुई थी तो वे लगभग ऐसी ही स्थिति में जी रहे थे। इस आबादी का सकारात्मक पहलू यह है कि किसी एक मालिक के कारख़ाने में काम नहीं करने के कारण इनकी चेतना उस भटकाव से मुक्त होती है, जिसे लेनिन ने “पेशागत संकुचित वृत्ति” का नाम दिया था। काम के घण्टों को कम करने, ठेका-प्रथा समाप्त करने, रोज़गार गारण्टी व अन्य सामाजिक सुरक्षा की माँग ही इनकी बुनियादी माँग है। अतः इनकी लड़ाई की प्रकृति पहले दिन से ही मुख्यतः राजनीतिक होगी। वह किसी एक पूँजीपति के बजाय मुख्यतः समूचे पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के विरुद्ध केन्द्रित होगी। इन्हें संगठित करने की प्रक्रिया कठिन और लम्बी अवश्य होगी, लेकिन एक बार यह प्रक्रिया यदि आगे बढ़ गयी तो मज़दूर आन्दोलन में अर्थवादी भटकाव की ज़मीन भी काफ़ी कमज़ोर होगी और राजनीतिक संघर्षों में मज़दूर वर्ग की लामबन्दी का रास्ता अधिक आसान हो जायेगा।

कारख़ाना गेटों की प्रचार कार्रवाई और कारख़ाना-केन्द्रित आन्दोलनों के ज़रिये मज़दूर वर्ग के इस हिस्से से घनिष्ठ एकता बना पाना सम्भव नहीं होगा। इसके लिए क्रान्तिकारी प्रचारकों-संगठनकर्ताओं को मज़दूर बस्तियों में पैठना-फैलना होगा, वहाँ विविध प्रकार की संस्थाएँ और अड्डे विकसित करने होंगे और व्यापक मज़दूर आबादी के बीच विविध रचनात्मक कार्य करते हुए रोज़मर्रा के जीवन से जुड़े प्रश्नों, जैसे आवास, पेयजल, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के प्रश्नों पर, आन्दोलनात्मक कार्रवाइयों संगठित करनी होंगी। इसके बाद काम के घण्टे, ठेका प्रथा, रोज़गार-सुरक्षा जैसे प्रश्नों पर इलाक़ाई पैमाने पर आन्दोलन खड़ा करने की दिशा में क़दम-ब-क़दम आगे बढ़ना होगा।

मज़दूर वर्ग को संगठित करने का मतलब यदि कोई केवल ट्रेडयूनियन कार्य समझता है तो यह एक ट्रेडयूनियनवादी समझ है। बेशक, ट्रेडयूनियनों में मज़दूर वर्ग के लिए वर्ग-संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला होती हैं, लेकिन ट्रेडयूनियन कार्रवाइयों से अपनेआप पार्टी कार्य संगठित नहीं हो जाता। मज़दूरों को ट्रेडयूनियनों में संगठित करने और उनके रोज़मर्रा के संघर्षों को संगठित करने के प्रयासों के साथ-साथ हमें उनके बीच राजनीतिक प्रचार का काम – समाजवाद के प्रचार का काम, मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन के प्रचार का काम शुरू कर देना होगा। मज़दूर आन्दोलन में वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा केवल ऐसे सचेतन प्रयासों से ही डाली और स्थापित की जा सकती है। इस काम में मज़दूर वर्ग के एक राजनीतिक अख़बार की भूमिका सबसे अहम होगी। ऐसा अख़बार राजनीतिक प्रचारक-संगठनकर्ता-आन्दोलनकर्ता के हाथों में पहुँचकर स्वयं एक प्रचारक-संगठनकर्ता-आन्दोलनकर्ता बन जायेगा तथा मज़दूरों के बीच से पार्टी-भर्ती और मज़दूरों की क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षा का प्रमुख साधन बन जायेगा। ऐसे अख़बार के मज़दूर रिपोर्टर्स-एजेण्टों-वितरकों का एक पूरा नेटवर्क खड़ा किया जा सकता है, उसके लिए मज़दूरों से नियमित सहयोग जुटाने वाली टोलियाँ बनायी जा सकती हैं और अख़बार के नियमित जागरूक पाठकों को तथा मज़दूर रिपोर्टर्स-एजेण्टों को लेकर जगह-जगह मज़दूरों के मार्क्सवादी अध्ययन-मण्डल संगठित किये जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में मज़दूरों के बीच से पार्टी-भर्ती और राजनीतिक शिक्षा के काम को आगे बढ़ाकर हमें पार्टी-निर्माण के काम को आगे बढ़ाना होगा।

इस तरह मज़दूरों के बीच से पार्टी-संगठनकर्ताओं और कार्यकर्ताओं की भर्ती और तैयारी के बाद ही ट्रेड-यूनियन कार्य को आगे की मंज़िल में ले जाया जा सकता है तथा उसे अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद से मुक्त रखते हुए क्रान्तिकारी लाइन पर कायम रखने की एक बुनियादी गारण्टी हासिल की जा सकती है। साथ ही, ऐसा करके ही, किसी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पार्टी के कम्पोज़ीशन में मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से आये पेशेवर क्रान्तिकारी व ऐक्टिविस्ट साथियों के मुक़ाबले मज़दूर पृष्ठभूमि के साथियों का अनुपात क्रमशः ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाया जा सकता है, पार्टी के क्रान्तिकारी सर्वहारा हरावल चरित्र को ज़्यादा से ज़्यादा मज़बूत बनाया जा सकता है, पार्टी के भीतर विजातीय तत्त्वों और लाइनों के खिलाफ़ नीचे से निगरानी का माहौल तैयार किया जा सकता है और इनकी ज़मीन कमज़ोर की जा सकती है। इसके साथ ही कम्युनिस्ट संगठनकर्ताओं को व्यापक मज़दूर आबादी के बीच तरह-तरह की संस्थाएँ जनदुर्ग के स्तम्भों के रूप में खड़ी करनी होंगी और व्यापक सार्वजनिक मंच संगठित करने होंगे। ये संस्थाएँ और ये मंच न केवल वर्ग के हरावल दस्ते को वर्ग के साथ मज़बूती से जोड़ने का काम करेंगे, बल्कि इनके नेतृत्व और संचालन के ज़रिये आम मेहनतकश राजकाज और समाज के ढाँचे को चलाने का प्रशिक्षण भी लेंगे तथा अभ्यास भी करेंगे। इसे जनता की वैकल्पिक सत्ता के भ्रूण के रूप में देखा जा सकता है, जिन्हें शुरुआती दौर से ही हमें सचेतन रूप से विकसित करना होगा। भविष्य में इनके अमली रूप किस रूप में सामने आयेंगे, यह हम आज नहीं बता सकते, लेकिन क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य पंचायत के रूप में हम वैकल्पिक लोक सत्ता के सचेतन विकास की इसी अवधारणा को

प्रस्तुत करना चाहते हैं। अक्टूबर क्रान्ति के पूर्व सोवियतों का विकास स्वयंस्फूर्त ढंग से (सबसे पहले 1905-07 की क्रान्ति के दौरान) हुआ था, जिसे बोल्शेविकों ने सर्वहारा सत्ता का केन्द्रीय ऑर्गन बना दिया। अब इक्कीसवीं शताब्दी में, भारत के सर्वहारा क्रान्तिकारियों को नयी समाजवादी क्रान्ति की तैयारी करते हुए मेहनतकश वर्गों की वैकल्पिक क्रान्तिकारी सत्ता को सचेतन रूप से विकसित करना होगा और ऐसा शुरुआती दौर से ही करना होगा। यह एक विस्तृत चर्चा का विषय है, लेकिन यहाँ इतना बता देना ज़रूरी है कि आज की दुनिया में मजबूत सामाजिक अवलम्बों वाली किसी बुर्जुआ राज्यसत्ता को आम बगावत के द्वारा चकनाचूर करने के लिए “वर्गों के बीच लम्बा अवस्थितिगत युद्ध” अवश्यम्भावी होगा और इस “युद्ध” में सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता के ऐसे जनदुर्गों की अपरिहार्यतः महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी। साथ ही, जनता की वैकल्पिक सत्ता के निर्माण की प्रक्रिया को सचेतन रूप से आगे बढ़ाकर ही, क्रान्ति के बाद सर्वहारा जनवाद के आधार को व्यापक बनाया जा सकता है और पूँजीवादी पुनर्स्थापना के लिए सचेष्ट बुर्जुआ तत्त्वों के विरुद्ध सतत संघर्ष अधिक प्रभावी, निर्मम निर्णायक और समझौताहीन ढंग से चलाया जा सकता है। स्पष्ट है कि नयी समाजवादी क्रान्ति की सोच से जुड़ी वैकल्पिक सत्ता के सचेतन निर्माण की अवधारणा के पीछे सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं की अहम भूमिका है।

जहाँ तक औद्योगिक मजदूर वर्ग के बीच ट्रेडयूनियन कार्यों की बात है, हमें कारखाना-केन्द्रित यूनियनों में काम करने और उन पर अपनी राजनीति का वर्चस्व स्थापित करने के हर अनुकूल अवसर का इस्तेमाल करना चाहिए, लेकिन हमारा ज़ोर (असंगठित मजदूर आबादी को मुख्य लक्ष्य बनाने के नाते) मुख्य तौर पर, यदि ताक़त जुट जाये तो, इलाकाई पैमाने पर मजदूरों की यूनियनों संगठित करने पर होना चाहिए। आज इसके लिए वस्तुगत परिस्थितियाँ, पहले हमेशा से अधिक अनुकूल हैं।

आज की मंज़िल में, आगे के कार्यभारों की चर्चा हम संक्षेप में आम दिशा के रूप में ही कर सकते हैं। अपने विकास की आगे की मंज़िल में, कोई कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन या सर्वभारतीय पार्टी औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के बाद दूसरी प्राथमिकता में अपना काम गाँवों की विशाल सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी पर केन्द्रित करेगी। उसका काम गाँव के ग़रीबों में ज़मीन की भूख पैदा करना नहीं बल्कि उन्हें यह बतलाना होगा कि ज़मीन के किसी छोटे टुकड़े का मालिकाना न तो उनकी समस्याओं का समाधान है, न ही पूँजी की मार से वे उसे बचा ही सकते हैं। केवल समाजवाद के अन्तर्गत भूमि का सामुदायिक व राजकीय स्वामित्व ही उनकी समस्या का समाधान हो सकता है और उनकी आज़ादी एवं समानता की, उनके जनवादी अधिकारों की एकमात्र गारण्टी हो सकता है। हमें उनके राजनीतिक संघर्षों को बुर्जुआ राज्यसत्ता के विरुद्ध केन्द्रित करना होगा और मजदूरी के सवाल पर उनके आर्थिक संघर्ष को गाँव के पूँजीवादी भूस्वामियों व कृषि-आधारित उद्योगों के मालिकों के विरुद्ध केन्द्रित करना होगा। पूँजी की मार से त्रस्त छोटे और निम्न मध्यम मालिक किसानों को भी हमें लगातार यह बताना होगा कि पूँजीवादी समाज में जगह-ज़मीन से उजड़कर सर्वहारा की क़तारों में शामिल होना उनकी नियति है, कि लागत मूल्य और लाभकारी मूल्य की लड़ाई

से उन्हें कुछ भी हासिल नहीं होगा और उनके सामने एकमात्र रास्ता यही है कि वे सर्वहारा वर्ग के साथ मिलकर साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और धनी किसानों की सत्ता के विरुद्ध, समाजवाद के लिए संघर्ष करें। इसके ऊपर मँझोले मालिक किसानों का जो मध्यवर्ती संस्तर है, उसे पूँजी और श्रम के बीच की लड़ाई में तटस्थ या निष्क्रिय बनाने की हर चन्द कोशिश करनी होगी, पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध केन्द्रित उसकी माँगों को पूरा समर्थन देना होगा, ऐसी माँगों पर उनके आन्दोलन (जनता के अन्य वर्गों के साथ साझा आन्दोलन) संगठित करने होंगे तथा बड़े मालिक किसानों के आन्दोलनों से उन्हें अलग करने की हर सम्भव कोशिश करनी होगी।

इसके बाद कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का अगला लक्ष्य शहरों में सेवाक्षेत्र और वाणिज्य से जुड़े सर्वहारा वर्ग को उनकी आर्थिक और राजनीतिक माँगों पर संगठित करना होगा। शहरी मध्यवर्ग का एक छोटा-सा ऊपरी हिस्सा आज समृद्धि और विलासिता के शिखर पर बैठा हुआ है और पूँजीवादी व्यवस्था के सर्वाधिक विश्वस्त स्तम्भ की भूमिका निभा रहा है। उसका मध्यवर्ती संस्तर बस जैसे-तैसे अपने अस्तित्व को बनाये हुए है, समृद्धि के सपने पाले हुए कभी वह ऊपर की ओर देखता है, तो कभी मोहभंग की स्थिति में व्यवस्था-विरोध की बातें करता है। शेष निम्न-मध्य वर्ग की एक भारी आबादी है जो पूँजी की मार से त्रस्त है और रोज़मर्रा की ज़रूरतें भी मुश्किल से ही जुटाती हुई लगातार तमाम अनिश्चितताओं के बीच जी रही है। इस तबके के युवाओं के सामने बेरोज़गारी की विकराल समस्या मुँह बाये खड़ी है। लगातार क्रान्तिकारी प्रचार की कार्रवाई के द्वारा कम्युनिज़्म के प्रति इसके पूर्वाग्रहों और भ्रान्तियों को तोड़कर इसे समाजवाद के पक्ष में खड़ा किया जा सकता है। रोज़गार और बुनियादी नागरिक माँगों पर मध्य वर्ग के इस हिस्से को संगठित करके क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट इसे सर्वहारा वर्ग के साथ मोर्चे में साथ ला सकते हैं।

भारतीय सर्वहारा वर्ग का हरावल दस्ता शहरों और गाँवों की सर्वहारा आबादी को संगठित करने के साथ ही तीन वर्गों का रणनीतिक संयुक्त मोर्चा (गाँवों-शहरों की सर्वहारा आबादी, छोटे मालिक किसानों सहित गाँवों-शहरों की अर्द्धसर्वहारा आबादी तथा उनके ढुलमुल दोस्त के रूप में मध्यम किसान एवं गाँवों-शहरों का मध्य वर्ग) कायम करके ही नयी समाजवादी क्रान्ति को – साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी क्रान्ति को सफल बना सकता है। पूँजीवादी भूस्वामी-फार्मर-कुलक और सभी छोटे-बड़े पूँजीपति आज क्रान्ति के दुश्मनों की श्रेणी में आते हैं। केवल नयी समाजवादी क्रान्ति का रास्ता ही आज भारतीय जनता की मुक्ति का रास्ता हो सकता है। इसके कार्यक्रम को अमल में लाने वाली सर्वहारा वर्ग की पार्टी के निर्माण की दिशा में आगे क़दम बढ़ाकर ही आज के गतिरोध को तोड़ा जा सकता है। दूसरा कोई भी रास्ता नहीं है।

नयी शुरुआत कहाँ से करें और प्राथमिकताओं एवं ज़ोर का निर्धारण किस प्रकार और किस रूप में करें?

सर्वहारा के हरावल दस्ते के फिर से निर्माण की प्रक्रिया आज, अभी प्रारम्भिक अवस्था

में है, बस शुरुआत करनेभर की स्थिति में है। ऐसी स्थिति में सभी मोर्चों पर सभी कामों को एक साथ हाथ में कूटई नहीं लिया जा सकता। आज का महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शुरुआत कहाँ से करें और हमारे कामों की प्राथमिकता क्या हो?

पार्टी-निर्माण के काम को आज का प्रमुख काम मानते हुए, सबसे पहले यह जरूरी है कि हम चन्द एक चुने हुए औद्योगिक केन्द्रों में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के बीच अपनी मुख्य एवं सर्वाधिक ताक़त केन्द्रित करें। वहाँ मज़दूरों के जीवन के साथ एकरूप होकर क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं को ठोस परिस्थितियों के हर पहलू की जाँच-पड़ताल एवं अध्ययन करना होगा, मज़दूर आबादी के बीच तरह-तरह की संस्थाएँ बनाकर रचनात्मक कार्य करने होंगे, ताक़त एवं अनुकूल अवसर के हिसाब से मज़दूरों के रोज़मर्रा के आर्थिक एवं राजनीतिक संघर्षों में भागीदारी करते हुए उनके बीच व्यवहार के धरातल पर क्रान्तिकारी वाम राजनीति का प्राधिकार स्थापित करना होगा और इसके साथ-साथ राजनीतिक शिक्षा एवं प्रचार की कार्रवाइयाँ विशेष ज़ोर देकर संगठित करनी होंगी। यह जरूरी है कि मज़दूर वर्ग के बीच से पार्टी-भर्ती और उस नयी भर्ती की राजनीतिक शिक्षा एवं सांगठनिक-राजनीतिक कार्यों में उसके मार्गदर्शन के लिए मज़दूर वर्ग का एक ऐसा राजनीतिक अख़बार नियमित रूप से प्रकाशित किया जाये जो मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन और समाजवाद का सीधे प्रचार करते हुए मज़दूरों के शिक्षक, प्रचारक और संगठनकर्ता की भूमिका निभाये। ऐसा अख़बार पार्टी-निर्माण के प्रमुख उपकरण की भूमिका निभायेगा।

लेकिन इतने कामों को अंजाम देने के लिए तथा एक छोटे से पार्टी संगठन के जरूरी बुनियादी पार्टी कामों को करने के लिए भी आज सक्षम संगठनकर्ताओं की भारी कमी है। इसलिए, आज की फ़ौरी ज़रूरत यह है कि असरदार ढंग से शुरुआत करने के लिए, जल्दी से जल्दी कुछ सक्षम पेशेवर संगठनकर्ताओं की भर्ती हो, चाहे वह मध्य वर्ग से हो या मज़दूर वर्ग से। इस फ़ौरी ज़रूरत के लिए उचित और व्यावहारिक यही होगा कि मज़दूर वर्ग के बीच प्रचार, शिक्षा एवं आन्दोलन की कार्रवाई को 'लो प्रोफ़ाइल' पर जारी रखते हुए, शुरु के कुछ वर्षों के दौरान मध्यवर्गीय शिक्षित युवाओं और छात्रों के मोर्चे पर क्रान्तिकारी भर्ती को कमान में रखते हुए, कामों पर सबसे अधिक ज़ोर दिया जाये और फिर सक्षम पेशेवर क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं की एक नयी टीम जुटाकर मज़दूरों के बीच कामों पर ज़ोर को मुख्य बना दिया जाये। पेशेवर क्रान्तिकारियों की भर्ती मज़दूरों के बीच से भी होगी और वही भावी क्रान्तिकारी पार्टी की केन्द्रीय शक्ति होगी, लेकिन भारतीय सर्वहारा वर्ग की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, उसमें थोड़ा लम्बा समय लगेगा। इसलिए, कम समय में शुरुआती ताक़त जुटाने के लिए प्रारम्भ के कुछ वर्षों के दौरान शिक्षित मध्य वर्ग के उन्नत और जुझारू तत्वों की पार्टी-भर्ती पर ज़्यादा बल देना ही आज की परिस्थितियों में एक सही क़दम होगा। फिर ताक़त बढ़ते जाने के साथ ही हमें प्राथमिकता-क्रम से उन वर्गों के बीच और उन मोर्चों पर अपने कामों का विस्तार करते जाना होगा, जिनकी चर्चा हमने ऊपर की है।

लेकिन पार्टी-निर्माण के काम की इस प्रारम्भिक अवस्था में भी, बुनियादी विचारधारात्मक कार्यभारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती या उन्हें टाला नहीं जा सकता।

विपर्यय और पूँजीवादी पुनरुत्थान के वर्तमान अन्धकारमय दौर में पूरी दुनिया की बर्जुआ मीडिया और बर्जुआ राजनीतिक साहित्य ने समाजवाद के बारे में तरह-तरह के कुत्सा प्रचार करके विगत सर्वहारा क्रान्तियों की तमाम विस्मयकारी उपलब्धियों को झूठ के अम्बार तले ढँक दिया है। आज की युवा पीढ़ी सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान और विगत सर्वहारा क्रान्तियों की वास्तविकताओं से सर्वथा अपरिचित है। उसे यह बताने की ज़रूरत है कि मार्क्सवाद के सिद्धान्त क्या कहते हैं और इन सिद्धान्तों को अमल में लाते हुए बीसवीं शताब्दी की सर्वहारा क्रान्तियों ने क्या उपलब्धियाँ हासिल कीं। उन्हें यह बताना होगा कि सर्वहारा क्रान्तियों के प्रथम संस्करणों की पराजय कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी और फिर उनके नये संस्करणों का सृजन और विश्व पूँजीवाद की पराजय भी अवश्यम्भावी है। उन्हें यह बताना होगा कि विगत क्रान्तियों ने पराजय के बावजूद, पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने का उपाय भी बताया है और इस सन्दर्भ में चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं का युगान्तरकारी महत्त्व है। आज के सर्वहारा वर्ग की नयी पीढ़ी को इतिहास की इन्हीं शिक्षाओं से परिचित कराने के कार्यभार को हम नये सर्वहारा पुनर्जागरण का नाम देते हैं। लेकिन इक्कीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियाँ हूबहू बीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों के नक्षत्रकदम पर नहीं चलेंगी। ये अपनी महान पूर्वज क्रान्तियों से ज़रूरी बुनियादी शिक्षाएँ लेंगी और फिर इस विरासत के साथ, वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन करके, पूँजी की सत्ता को निर्णायक शिकस्त देने की रणनीति एवं आम रणकौशल विकसित करेंगी। यह प्रक्रिया गहन सामाजिक प्रयोग, उनके सैद्धान्तिक समाहार, गम्भीर शोध-अध्ययन, वाद-विवाद, विचार-विमर्श और फिर नयी सर्वहारा क्रान्तियों की प्रकृति, स्वरूप एवं रास्ते से सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जनसमुदाय को परिचित कराने की प्रक्रिया होगी। इन्हीं कार्यभारों को हम नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मार्क्सवादी दर्शन को सर्वतोमुखी नयी समृद्धि तो भावी नयी समाजवादी क्रान्तियाँ ही प्रदान करेंगी, लेकिन यह प्रक्रिया नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभारों को अंजाम देने के साथ ही शुरू हो जायेगी। नये सर्वहारा पुनर्जागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार विश्व-ऐतिहासिक विपर्यय के वर्तमान दौर में, तथा विश्व पूँजीवाद की प्रकृति एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन करके श्रम और पूँजी के बीच के विश्व-ऐतिहासिक महासमर के अगले चक्र में पूँजी की शक्तियों की अन्तिम रूप से पराजय को सुनिश्चित बनाने की सर्वतोमुखी तैयारियों के कठिन चुनौतीपूर्ण दौर में, सर्वहारा वर्ग के अनिवार्य कार्यभार हैं जिन्हें सर्वहारा वर्ग का हरावल दस्ता अपनी सचेतन कार्रवाइयों के द्वारा नेतृत्व प्रदान करेगा। ये कार्यभार पार्टी-निर्माण के कार्यभारों के साथ अविभाज्यतः जुड़े हुए हैं और पार्टी-निर्माण के प्रारम्भिक चरण से ही इन्हें हाथ में लेना ही होगा, चाहे हमारे ऊपर अन्य आवश्यक राजनीतिक-सांगठनिक कामों का बोझ कितना भी अधिक क्यों न हो! इन कार्यभारों को पूरा करने वाला नेतृत्व ही नयी समाजवादी क्रान्ति की लाइन को आगे बढ़ाने के लिए सैद्धान्तिक अध्ययन और ठोस सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक

परिस्थितियों के अध्ययन के कामों को सफलतापूर्वक आगे बढ़ा पायेगा।

एक नयी लाइन जैसे-जैसे सुनिश्चित शक्ति अख्तियार करती जाती है, वैसे-वैसे कार्यकर्ता निर्णायक होते चले जाते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया अपनेआप घटित नहीं होती। एक सही लाइन के नतीजे तक पहुँचने के बाद सांगठनिक कार्यों पर विशेष जोर बढ़ा देना पड़ता है। तभी जाकर क़तारें निर्णायक ढंग से प्रभावी हो पाती हैं। लाइन के विकास के सन्दर्भ में अभी काफ़ी कुछ किया जाना है, लेकिन नयी समाजवादी क्रान्ति की आम दिशा और आम स्वरूप आज हमारे सामने हैं। इसलिए, अब समय आ गया है कि सांगठनिक कार्यों पर हम विशेष जोर दें। सबसे पहले ज़रूरी है कि तमाम विजातीय तत्त्वों और तमाम दुलमुलयकीनों को, तमाम क़ायरों-निठल्लों और तमाम अवसरवादियों को छाँट-बीनकर बाहर फेंक दिया जाये। कूड़ा-करकट की सफ़ाई लोहे के हाथों से करनी होगी और बोल्शेविक परम्परा को महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की शिक्षाओं के आलोक में आगे बढ़ाते हुए जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित इस्पाती सांगठनिक ढाँचे का निर्माण करना होगा। पार्टी-निर्माण के वर्तमान दौर की अन्तर्वस्तु के हिसाब से सांगठनिक ढाँचा खड़ा करना ही आज पार्टी-गठन का कार्यभार है, जिसकी उपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती।

नयी समाजवादी क्रान्ति के तूफ़ान को निमन्त्रण दो! सर्वहारा के हरावलों से अपेक्षा है स्वतन्त्र वैज्ञानिक विवेक की और धारा के विरुद्ध तैरने के साहस की!

इतिहास में पहले भी कई बार ऐसा देखा गया है कि राजनीतिक पटल पर शासक वर्गों के आपसी संघर्ष ही सक्रिय और मुखर दिखते हैं तथा शासक वर्गों और शासित वर्गों के बीच के अन्तरविरोध नेपथ्य के नीम अँधेरे में धकेल दिये जाते हैं। ऐसा तब होता है जब क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी होती है, ऐतिहासिक प्रगति की शक्तियों पर गतिरोध और विपर्यय की शक्तियाँ हावी होती हैं। हमारा समय विपर्यय और प्रतिक्रिया का ऐसा ही अँधेरा समय है। और यह अँधेरा पहले के ऐसे ही कालखण्डों की तुलना में बहुत अधिक गहरा है, क्योंकि यह श्रम और पूँजी के बीच के विश्व ऐतिहासिक महासमर के दो चक्रों के बीच का ऐसा अन्तराल है, जब पहला चक्र श्रम की शक्तियों के पराजय के साथ समाप्त हुआ है और दूसरा चक्र अभी शुरू नहीं हो सका है। विश्व-पूँजीवाद के ढाँचागत असाध्य संकट, उसकी चरम परजीविता, साम्राज्यवादी लुटेरों की फिर से गहराती प्रतिस्पर्धा, पूरी दुनिया के विभिन्न हिस्सों में साम्राज्यवादी बर्बरता और पूँजीवादी लूट-खसोट के विरुद्ध जनसमुदाय की लगातार बढ़ती नफ़रत और इस कठिन समय में क्रान्तिकारी सर्वहारा नेतृत्व के अभाव के बावजूद दुनिया के किसी न किसी कोने में भड़कते रहने वाले जनसंघर्षों का सिलसिला यह स्पष्ट संकेत दे रहा है कि आने वाले समय में विश्व पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ा जाने वाला युद्ध निर्णायक होगा। श्रम और पूँजी के बीच विश्व ऐतिहासिक महासमर का अगला चक्र निर्णायक होगा क्योंकि अपनी जड़ता की शक्ति से जीवित विश्व पूँजीवाद में अब इतनी जीवन शक्ति नहीं बची है कि अक्ठूबर क्रान्ति के नये संस्करणों द्वारा पराजित

होने के बाद वह फिर विश्वस्तर पर उठ खड़ा हो और दुनिया को विश्वव्यापी विपर्यय का एक और दौर देखना पड़े। इक्कीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों के ऊपर पूँजीवाद के पूरे युग को इतिहास की कचरा-पेटी के हवाले करने की ज़िम्मेदारी है। साथ ही, ये क्रान्तियाँ केवल पाँच सौ वर्षों की आयु वाले पूँजीवाद के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि पाँच हजार वर्षों की आयु वाले समूचे वर्ग-समाज के विरुद्ध निर्णायक क्रान्तियाँ होंगी, क्योंकि पूँजीवाद के बाद मानव सभ्यता के अगले युग केवल समाजवादी संक्रमण और कम्युनिज़्म के युग ही हो सकते हैं – समाज-विकास की गतिकी का ऐतिहासिक-वैज्ञानिक अध्ययन यही बताता है।

इसलिए, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भावी क्रान्तियों को रोकने के लिए विश्व-पूँजीवाद आज अपनी समस्त आत्मिक-भौतिक शक्ति का व्यापकतम, सूक्ष्मतम और कुशलतम इस्तेमाल कर रहा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि विश्व ऐतिहासिक महासमर के निर्णायक चक्र के पहले, प्रतिक्रिया और विपर्यय का अँधेरा इतना गहरा है और गतिरोध का यह कालखण्ड भी पहले के ऐसे ही कालखण्डों की अपेक्षा बहुत अधिक लम्बा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पूरी दुनिया में नयी सर्वहारा क्रान्तियों की हरावल शक्तियाँ अभी भी ठहराव और बिखराव की शिकार हैं। यह सबकुछ इसलिए है कि हम युग-परिवर्तन के अब तक के सबसे प्रचण्ड झंझावाती समय की पूर्वबेला में जी रहे हैं।

यह एक ऐसा समय है जब इतिहास का एजेण्डा तय करने की ताक़त शासक वर्गों के हाथों में है। कल इतिहास का एजेण्डा तय करने की कमान सर्वहारा वर्ग के हाथों में होगी। यह एक ऐसा समय है जब शताब्दियों के समय में चन्द दिनों के काम पूरे होते हैं, यानी इतिहास की गति इतनी मद्धम होती है कि गतिहीनता का आभास होता है। लेकिन इसके बाद एक ऐसा समय आना ही है जब शताब्दियों के काम चन्द दिनों में अंजाम दिये जायेंगे।

लेकिन गतिरोध के इस दौर की सच्चाइयों को समझने का यह मतलब नहीं कि हम इत्मीनान और आराम के साथ काम करें। हमें अनवरत उद्विग्न आत्मा के साथ काम करना होगा, जान लड़ाकर काम करना होगा। केवल वस्तुगत परिस्थितियों से प्रभावित होना इन्क़लाबियों की फ़ितरत नहीं। वे मनोगत उपादानों से वस्तुगत सीमाओं को सिकोड़ने-तोड़ने के उद्यम को कभी नहीं छोड़ते। अपनी कम ताक़त को हमेशा कम करके ही नहीं आँका जाना चाहिए। अतीत की क्रान्तियाँ बताती हैं कि एक बार यदि सही राजनीतिक लाइन के निष्कर्ष तक पहुँच जाया जाये और सही सांगठनिक लाइन के आधार पर सांगठनिक काम करके उस राजनीतिक लाइन को अमल में लाने वाली क्रान्तिकारी क़तारों की शक्ति को लामबन्द कर दिया जाये तो बहुत कम समय में हालात को उलट-पुलटकर विस्मयकारी परिणाम हासिल किये जा सकते हैं। हमें धारा के एकदम विरुद्ध तैरना है। इसलिए, हमें विचारधारा पर अडिग रहना होगा, नये प्रयोगों के वैज्ञानिक साहस में रतीभर कमी नहीं आने देनी होगी, जी-जान से जुटकर पार्टी-निर्माण के काम को अंजाम देना होगा और वर्षों के काम को चन्द दिनों में पूरा करने का ज़ब्बा, हर हाल में कठिन से कठिन स्थितियों में भी बनाये रखना होगा।

(बिगुल, दिसम्बर 2006-जनवरी 2007 अंक में प्रकाशित)

अक्टूबर क्रान्ति की 89वीं वर्षगाँठ के अवसर पर अभी भी जीवित है ज्वाला! फिर भड़केगी जंगल की आग!

यूँ तो दुनिया लगातार अविराम गति से बनती-बदलती रहती है, पर इसकी गति सदा एकसमान नहीं रहती। इतिहास के कुछ ऐसे गतिरोध भरे कालखण्ड होते हैं जब चन्द दिनों के काम शताब्दियों में पूरे होते हैं और फिर ऐसे दौर आते हैं जब शताब्दियों के काम चन्द दिनों में पूरे कर लिये जाते हैं। महान अक्टूबर क्रान्ति (नये कैलेण्डर के अनुसार 7 नवम्बर) का काल एक ऐसा ही समय था जब सर्वहारा वर्ग की जुझारू क्रान्तिकारी पार्टी के मार्ग-निर्देशन में रूस के मेहनतकश उठ खड़े हुए थे और सदियों पुरानी जड़ता और निरंकुशता की बेड़ियों को तोड़ दिया था। बगावत शुरू करने का संकेत देते हुए आधी रात को युद्धपोत अट्रोरा की तोपों ने जो गोले दागे, उनके धमाके मानो पूरी दुनिया में गूँज उठे और पूरी दुनिया में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक प्रचण्ड रणभेरी बन गये।

क्रान्ति के बाद रातोंरात भूमि-सम्बन्धी आज्ञापत्र जारी करके ज़मीन पर ज़मींदारों का मालिकाना बिना मुआवज़े के ख़त्म कर दिया गया और ज़मीन इस्तेमाल के लिए किसानों को दे दी गयी, किसानों को लगान से मुक्त कर दिया गया और तमाम खनिज संसाधन, जंगल और जलाशय जनता की सम्पत्ति हो गये। सभी कारख़ाने राज्य की सम्पत्ति बन गये और तमाम विदेशी कर्ज़ ज़ब्त कर लिये गये।

फ़रवरी 1917 में ज़ारशाही निरंकुशता के ध्वस्त होने के बाद बुर्जुआ वर्ग का जो गँठजोड़ सत्ता में आया था उसने कल्पना भी नहीं की होगी कि सर्वहारा इतनी चमत्कारी पहलकदमी दिखायेगा। उसे लेनिन के हाथों गढ़ी गयी शक्तिशाली और युयुत्सु पार्टी की ताक़त और तैयारी का अनुमान भी नहीं था। स्वयं पार्टी में भी कुछ लोग इस साहसिक क़दम के लिए तैयार नहीं थे और किसी न किसी बहाने इसे टालने की दलीलें दे रहे थे। लेकिन बोल्शेविक पार्टी और मज़दूर वर्ग ने लेनिन के इस आह्वान पर अमल किया कि क्रान्ति अभी इसी वक़्त, और अभी नहीं तो फिर कभी नहीं!

प्रतिक्रियावादी ताक़तों और क्रान्तिविरोधी ग़द्दारों की तमाम कोशिशों को कुचलते हुए बोल्शेविकों ने सत्ता पर क़ब्ज़ा कर लिया और रूस के विशाल प्रदेशों में क्रान्ति की विजययात्रा सुनिश्चित करने के लिए अपनी पूरी ताक़त झोंक दी। लेकिन पूँजी की ताक़तें इतनी जल्दी कहाँ हार मानने वाली थीं। मज़दूरों के राज को तहस-नहस करने के लिए जनरल देनिकिन, कोल्चाक और पेतल्यूरा को फ़ौज-फाटे से लैस करके भेजा गया। इधर-उधर बिखर गये श्वेत गार्डों के दस्ते और क्रान्ति-विरोधियों के विभिन्न गुटों ने जगह-जगह लड़ाई और मार-काट मचा रखी थी। इसी बीच अठारह देशों की सेनाओं ने एक साथ रूस पर हमला बोल दिया।

खूनी गृहयुद्ध का सिलसिला तीन साल तक तो प्रचण्ड रूप में चलता रहा, लेकिन उसके बाद भी काफ़ी समय तक जगह-जगह क्रान्तिविरोधी ताकतें सिर उठाती रहीं। लेकिन बोल्शेविकों के नेतृत्व में अत्यन्त कुशलता से रणनीतिक पैतरो का इस्तेमाल करते हुए समाजवादी सत्ता ने साम्राज्यवादियों और देशी प्रतिक्रियावादियों के हर पड़यन्त्र को शिकस्त दी।

नवोदित समाजवादी राज्य को साँस लेने और जड़ें मज़बूत करने का थोड़ा मौक़ा मिले इसके लिए नयी आर्थिक नीति (नेप) के तहत सम्पत्तिशाली वर्गों, खासकर गाँव के धनिकों को कुछ समय के लिए कुछ छूटें दी गयीं। इस बीच प्रतिक्रियावादियों की गोलियों का शिकार बनने के बाद से अस्वस्थता के बावजूद लगातार काम में जुटे लेनिन की मृत्यु से पार्टी को भारी झटका लगा लेकिन क्रान्ति की धारा रुकी नहीं। लाखों की संख्या में मेहनतकश और युवा पार्टी की क़तारों में शामिल हुए और भितरघातियों तथा दुलमुल तत्त्वों का मुक़ाबला करते हुए बोल्शेविक पार्टी सर्वहारा राज्य को मज़बूत बनाने में लगी रही। स्तालिन के नेतृत्व में समाजवादी निर्माण का काम आगे बढ़ता रहा।

दुनिया के इतिहास में पहली बार मार्क्सवाद की किताबों में लिखे सिद्धान्त ठोस सच्चाई बनकर ज़मीन पर उतरे। उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व का खात्मा कर दिया गया। पर विभिन्न रूपों में असमानताएँ अभी भी मौजूद थीं। जैसाकि लेनिन ने इंगित किया था, छोटे पैमाने के निजी उत्पादन से और निम्न पूँजीवादी परिवेश में लगातार पैदा होने वाले नये पूँजीवादी तत्त्वों से, समाज में अब भी मौजूद बुर्जुआ अधिकारों से, अपने खोये हुए स्वर्ग की प्राप्ति के लिए पूरा जोर लगा रहे सत्ताच्युत शोषकों से और साम्राज्यवादी घेरेबन्दी और घुसपैठ के कारण पूँजीवादी पुनर्स्थापना का खतरा बना हुआ था। इन समस्याओं से जूझते हुए पहली सर्वहारा सत्ता को समाजवादी संक्रमण की दीर्घकालिक अवधि से गुज़रते हुए कम्युनिज़्म की ओर यात्रा करनी थी। नवोदित समाजवादी सत्ता को फ़ासीवाद के ख़तरे का मुक़ाबला करते हुए समाजवादी संक्रमण के इन गहन गम्भीर प्रश्नों से जूझना था। निश्चय ही इसमें कुछ त्रुटियाँ हुईं जिनमें मूल और मुख्य त्रुटि यह थी कि समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष की प्रकृति और उसके संचालन के तौर-तरीकों को समझ पाने में कुछ समय तक सोवियत संघ का नेतृत्व विफल रहा। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध में फ़ासीवाद को परास्त करने के बाद स्तालिन ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण क़दम उठाये। समाजवादी समाज में किस प्रकार अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन और विनिमय विभिन्न रूपों में जारी रहता है और माल उत्पादन की अर्थव्यवस्था मौजूद रहती है इसका उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया था और इन समस्याओं पर चिन्तन की शुरुआत कर चुके थे। लेकिन यह प्रक्रिया आगे बढ़ती इसके पहले ही स्तालिन की मृत्यु हो गयी।

चौथे-पाँचवें दशक के वैचारिक अवरोध और साम्राज्यवाद की सम्पूर्ण आर्थिक-राजनीतिक-सामरिक शक्ति के विरुद्ध संघर्ष में पूरी पार्टी के सन्नद्ध रहने का लाभ उठाकर सोवियत संघ के भीतर जिन नये बुर्जुआ तत्त्वों ने राज्य, पार्टी और सामाजिक संरचना के भीतर अपने आधारों को पर्याप्त मज़बूत बना लिया था, वे स्तालिन की मृत्यु के बाद खुलकर सामने आ गये और सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना करने में कामयाब हो गये।

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व समाजवादी मुखौटे वाले नये बुर्जुआ अधिनायकत्व में तब्दील हो गया। उत्पादन के साधनों पर समाजवादी स्वामित्व का वैधिक विभ्रम बना हुआ था पर सारतः उन पर पार्टी और राज्य के नौकरशाहों का नियन्त्रण था जो मज़दूरों के शोषण से उगाहे गये अतिरिक्त मूल्य का इस्तेमाल अपनी अय्याशी और सोवियत संघ को एक सामाजिक साम्राज्यवादी देश में तब्दील कर देने के लिए करते थे।

यही वह नक़ली समाजवाद, यानी राजकीय पूँजीवादी तन्त्र था जो अपने आन्तरिक अन्तरविरोधों के चलते नवें दशक में ग्लासनोस्त-पेरेस्ट्रोइका से होते हुए विघटित हो गया। सोवियत संघ के विघटन के साथ ही पश्चिमी पूँजीवाद के तिकड़मों-षड्यन्त्रों और चौतरफ़ा कोशिशों के चलते पूर्वी यूरोप की भूतपूर्व समाजवादी व्यवस्थाएँ भी ढह गयीं और पश्चिमी पूँजी ने बिना देर किये इन सभी देशों को रौंद डाला।

लेकिन जिस समय सोवियत संघ में पूँजीवादी पुनर्स्थापना की शुरुआत हुई, उस समय तक माओ के नेतृत्व में चीनी जनता समाजवाद के परचम को उठाकर आगे बढ़ना शुरू कर चुकी थी। यही वह समय था जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूर्वी यूरोप में भी लाल सत्ताएँ कायम हुई थीं। हालाँकि सोवियत संघ में पूँजीवाद की बहाली के बाद कमज़ोर आधार वाली ये सत्ताएँ टिकी नहीं रह सकीं लेकिन एक काल विशेष में विशेष शक्ति सन्तुलन को बदलने में तो इनकी भूमिका थी ही।

अक्टूबर क्रान्ति के घन-गर्जन ने औपनिवेशिक देशों में राष्ट्रीय मुक्ति-युद्धों के लिए एक नयी प्रेरणा का संचार किया था। राष्ट्रीय मुक्ति-युद्ध अक्टूबर क्रान्ति के प्रभाव में ही सबसे तेज़ी से संगठित हुए। लेनिन के शब्दों में राष्ट्रीय मुक्ति-युद्ध विश्व सर्वहारा क्रान्ति के अविभाज्य अंग थे। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद के तीन दशकों के दौरान उपनिवेशवाद की पराजय के रूप में इन राष्ट्रीय मुक्ति-युद्धों की परिणति सामने आयी। अनेक देशों में उपनिवेशवाद से मुक्ति के बाद देशी बुर्जुआ शासन की स्थापना हुई जो अलग-अलग हद तक साम्राज्यवाद से नथी थे और सारतः प्रतिक्रियावादी शासक ही थे लेकिन दुनिया के पैमाने पर यह जनता की एक विजय थी। उपनिवेशवाद का खात्मा ऐतिहासिक अर्थों में साम्राज्यवाद का पीछे हटना था और मुक्तिकामी जनता की एक विजय थी। चीन ही नहीं कोरिया और वियतनाम में भी सर्वहारा की हरावल पार्टी राष्ट्रीय मुक्ति-युद्ध का नेतृत्व कर रही थी। हिन्दचीन, इण्डोनेशिया, फिलिपीन्स और बर्मा में सर्वहारा पार्टियाँ शक्तिशाली सामाजिक आधार बनाते हुए उपनिवेशवाद के खिलाफ़ संघर्ष का नेतृत्व कर रही थीं। इन सभी देशों में कम्युनिस्ट आन्दोलन काफ़ी आगे था।

कहा जा सकता है कि अक्टूबर क्रान्ति से लेकर पिछली शताब्दी के छठे दशक तक क्रान्ति की धारा प्रतिक्रान्ति की धारा पर हावी रही। अक्टूबर क्रान्ति एक ऐसा दिन था जब शताब्दियों के काम को एक ही दिन में अंजाम दिया गया। इसके बाद चार दशक तक इतिहास लगातार तेज़ गति से आगे बढ़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध की पूर्ववेला और युद्ध के कुछ प्रारम्भिक

वर्षों के दौरान भले ही फ़ासीवाद हावी रहा लेकिन इस दौर में भी सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में जनता की शक्ति उसे लगातार टक्कर देती रही और फिर समाजवादी राज्य के नेतृत्व में ही फ़ासीवाद की ताकतों को निर्णायक शिकस्त दी गयी। युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के देशों में लाल सत्ताएँ कायम हुईं, चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में क्रान्ति विजयी हुई और एशिया-अफ़्रीका के अनेक देश उपनिवेशवाद से मुक्त हो गये। अधिकांश उपनिवेशों में मुक्ति संघर्ष काफ़ी आगे बढ़े हुए थे और साम्राज्यवादियों का पीछे हटना बस वक़्त की बात थी। इस पूरे परिदृश्य को देखते हुए यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 1917 के बाद के चालीस वर्षों तक प्रतिक्रान्ति की लहर पर क्रान्ति की लहर ही हावी रही। इतिहास लगातार अभूतपूर्व गति से आगे बढ़ता रहा जिसकी शुरुआत अक्टूबर क्रान्ति से हुई थी।



आधुनिक विश्व इतिहास को गढ़ने में जिन दो क्रान्तियों ने सर्वाधिक मूलभूत भूमिका निभायी, वे थीं 1789 की फ़्रांसीसी क्रान्ति और 1917 की अक्टूबर क्रान्ति। पूँजीवाद और सर्वहारा के बीच के विश्व ऐतिहासिक महासमर के पहले चक्र का पहला अहम मुक़ाम था 1871 का पेरिस कम्यून जब पहली बार मज़दूरों ने अपना राज कायम किया। केवल 72 दिनों के अल्पकालिक शासन ने समाजवाद की एक भावी तस्वीर पेश की। आने वाले मज़दूर राज का एक ट्रेलर पेश करके पेरिस कम्यून विलुप्त हो गया पर वह इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ गया जो दुनिया के मज़दूरों और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को प्रेरित करती रही। कम्यून के सबकों के मार्क्स द्वारा किये समाहार को आगे बढ़ाते हुए लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की संगठित और जुझारू क्रान्तिकारी पार्टी गढ़ने की अवधारणा और प्रणाली विकसित की, उसके नेतृत्व में सुविचारित और योजनाबद्ध ढंग से क्रान्ति करने का विज्ञान और सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत समाजवादी संक्रमण को आगे बढ़ाने के तरीके विकसित किये। समाजवाद की समस्याओं पर भी लेनिन ने सोचना शुरू कर दिया था। उसी कड़ी को बाद में माओ ने आगे बढ़ाया और पूँजीवादी पुनर्स्थापना रोकने का शास्त्र विकसित कर मार्क्सवादी विज्ञान को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

जैसाकि हम पहले चर्चा कर रहे थे, अक्टूबर क्रान्ति के बाद से इतिहास की गति निरन्तर तेज़ रही और दुनिया के पैमाने पर क्रान्ति की लहर हावी रही। इधर दूसरे विश्वयुद्ध के बाद नये साम्राज्यवादी चौधरी अमेरिका के नये नेतृत्व में दुनियाभर के साम्राज्यवादियों ने समाजवादी खेमे के विरुद्ध शीतयुद्ध छेड़ रखा था। ऐसे समय में जब सोवियत संघ में संशोधनवादी सत्ता का पतन हुआ तो पूँजीवाद को एक नयी ताकत हासिल हो गयी। विश्व पैमाने पर वर्ग-शक्ति-सन्तुलन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सोवियत संघ में समाजवाद की पराजय महज़ किसी एक देश में समाजवाद की हार नहीं थी। सोवियत संघ पूँजी के विरुद्ध विश्व ऐतिहासिक महासमर में सर्वहारा वर्ग की अग्रिम चौकी था। वहाँ नये बुर्जुआ वर्ग का सत्ता में आना मज़दूर वर्ग और पूरी दुनिया की मुक्तिकामी जनता के लिए एक भारी धक्का था। फिर भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि ऐसा होते ही

प्रतिक्रान्ति की लहर हावी हो गयी थी। सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद भी चीनी क्रान्ति दुनिया की जनता के लिए ऊर्जा और प्रेरणा का स्रोत बनी रही। पचास और साठ के दशक में राष्ट्रीय मुक्ति-युद्ध उफान पर थे और नवउपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष भी दुनिया के कई देशों में विजय के करीब थे। 1960 का दशक एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के अधिकांश देशों से उपनिवेशवाद के खामे का साक्षी बना। हालाँकि साम्राज्यवाद शोषण के नये तौर-तरीके अपना रहा था। नवऔपनिवेशिक तरीके भी विफल होने के बाद आर्थिक ताकत के बूते पर लूट की नयी तरकीबें उसने ईजाद कर ली थीं, फिर भी उपनिवेशों की समाप्ति दुनिया की जनता की एक बड़ी विजय थी।

1956 के बाद खुशचेव ने स्तालिन पर कीचड़ उछालते हुए शान्तिपूर्ण संक्रमण, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और शान्तिपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा की संशोधनवादी गन्दी हवा बहाते हुए दुनियाभर में क्रान्तिकारी संघर्षों को भटकाने और कमजोर करने की मुहिम शुरू की जिसने दुनिया के पैमाने पर क्रान्ति की धारा को भारी नुकसान पहुँचाया और क्रान्तिकारी कृतारों में विभ्रम और निराशा पैदा की। ऐसे में चीन की पार्टी ने जब महान बहस की शुरुआत की तो इसने दुनियाभर के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों में आशा का संचार किया। समाजवादी संक्रमण की समस्याओं पर लेनिन के चिन्तन की कड़ी को आगे बढ़ाते हुए लम्बे चिन्तन के बाद और रूस में पूँजीवादी पुनर्स्थापना के अनुभवों का समाहार करते हुए माओ त्से-तुङ ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का दर्शन प्रस्तुत किया और उसे व्यवहार में उतारा। उन्होंने समाजवादी संक्रमण की दीर्घकालिक प्रकृति पर जोर देते हुए अधिग्रहण में क्रान्ति और सतत क्रान्ति जारी रखने की जरूरत बतायी, सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष और चौकसी पर जोर दिया। पूरी दुनिया में संशोधनवाद के साथ आमने-सामने के संघर्षों को इससे दिशा मिली। हर जगह संशोधनवादी पार्टियों से अलग मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियाँ संगठित होने लगीं। लेकिन 1976 में माओ के निधन के बाद चीन में भी पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी। यह कोई विडम्बना या समझ में न आने वाली बात नहीं थी। चीन एक पिछड़ा देश था और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की समझ बनने तक वहाँ पूँजीवादी तत्त्व अपनेआप को काफ़ी मज़बूत कर चुके थे।

पिछली शताब्दी के छठे दशक से लेकर 1976 में माओ के निधन तक क्रान्ति की धारा और प्रतिक्रान्ति की धारा एक-दूसरे से लगातार जूझती-टकराती रहीं। दुनिया के पैमाने पर ये एक-दूसरे से गुँथी-बुनी-सी चलती रहीं, कभी क्रान्ति की धारा हावी होती थी तो कभी प्रतिक्रान्ति की। लेकिन 1976 के बाद प्रतिक्रान्ति की धारा हावी होने लगी। चीन के बाद अल्बानिया में भी समाजवादी सत्ता का पतन हो गया। जो लोग अब भी सोवियत संघ के समाजवादी होने का भ्रम पाले हुए थे उन्हें ग्लासनोस्त और पेरैस्ट्रोइका तक समझ में आने लगा था कि यह समाजवाद नहीं है। लेकिन सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों की भूतपूर्व समाजवादी व्यवस्थाओं के पतन के बाद दुनिया की मेहनतकश जनता के बहुत बड़े हिस्से में गहरी निराशा छा गयी।

विश्व स्तर पर श्रम और पूँजी के विश्व ऐतिहासिक महासमर का पहला चक्र माओ के निधन के बाद चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के साथ समाप्त हो गया। इस प्रथम चक्र के अन्त में विश्व की जनता एक बार फिर वहाँ खड़ी थी जहाँ विश्व सर्वहारा के पास अपने मुक्त क्षेत्र के आधार इलाके के रूप में कोई भी समाजवादी राज्य नहीं रह गया। उसके पास मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्तालिन-माओ जैसा कोई मान्य अन्तरराष्ट्रीय नेता या मार्क्स-लेनिन-माओ की पार्टियों जैसी संघर्षों की आग में तपी-मँजी कोई अनुभवी पार्टी भी नहीं रही। सामयिक तौर पर यह पराजय और विपर्यय का दौर है जब प्रतिक्रिया का अन्धकार-सा छाया हुआ है। साम्राज्यवाद आक्रामक है और पूँजी की ताकतें पूरी दुनिया में तमाम सीमाओं को रौंदते हुए फैल रही हैं। इस दौर की तरह-तरह से व्याख्याएँ की जा रही हैं। कोई एकध्रुवीय विश्व के रूप में इसकी व्याख्या कर रहा है तो कोई अधिसाम्राज्य की बातें कर रहा है। जैसेकि साम्राज्यवाद के वर्चस्व को कोई प्रभावी चुनौती ही नहीं मिल रही है। साम्राज्यवाद की दिखायी पड़ने वाली शक्तिमत्ता के पीछे की सच्चाई तो यह है कि पूँजीवाद के बुनियादी अन्तरविरोध और भी तीखे होते जा रहे हैं। साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोध और उनकी गलाकाटू होड़ लगातार जारी है और अब और भी तीखी होती जा रही है। नयी धुरियाँ और नये समीकरण बन रहे हैं। दूसरी ओर जनता के संघर्ष भी यहाँ-वहाँ जारी हैं। बेशक यह क्रान्ति की शक्तियों के बिखराव का दौर है। क्रान्ति की लहर पर आज प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है। लेकिन जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, परिवर्तन का सिलसिला लगातार जारी रहता है। गतिरोध के दौर में भी प्रगति पूरी तरह कभी रुकती नहीं। जब इतिहास के चक्र को कुछ समय के लिए उल्टा घुमा दिया जाता है, तब भी इतिहास निर्मात्री शक्तियाँ इतिहास के गर्भ में पलती रहती हैं। वर्ग-संघर्ष कभी रुकता नहीं है। आज भी नहीं रुका है। दुनिया के कोने-कोने में जनता लड़ रही है। क्रान्ति की शक्तियाँ बिखरी ज़रूर हैं पर संघर्ष बन्द नहीं हुआ है। ब्राज़ील के भूमिहीन मज़दूरों का आन्दोलन, मेक्सिको में जपाटिस्टा का आन्दोलन हो या विकसित देशों के मज़दूरों के बार-बार फूट पड़ने वाले उग्र प्रदर्शन हों, सर्वहारा लगातार पूँजी के हमलों का प्रतिरोध कर रहा है। पेरू में चेरमैन गोंजालो की गिरफ्तारी के बाद आन्दोलन बिखर गया है लेकिन खत्म नहीं हुआ है। नेपाल में अनेक समस्याओं के बावजूद जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष जारी है। भारत ही नहीं दुनिया के हर देश में शायद ही कोई ऐसा दिन होता हो जब मेहनतकश जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष में न उतरती हो। समाजवाद की पराजय का लगातार ढिंढोरा पीटने के बावजूद पूँजीपति वर्ग लगातार क्रान्तियों के भय से आक्रान्त है और बुर्जुआ मीडिया निरन्तर समाजवाद और उसके नेताओं के खिलाफ झूठे दुष्प्रचार में लगा रहता है। यह तो निर्विवाद है कि समाजवादी क्रान्ति का परचम आज भी धूल में लिथड़ा नहीं है।

मज़दूर वर्ग को आज यह समझाने की ज़रूरत है कि कुछ क्रान्तियों की पराजय और कुछ सामाजिक प्रयोगों की विफलता विचारधारा की निर्णायक विफलता नहीं है। आज की पूँजीवादी दुनिया में जिस प्रकार पूँजीवादी उत्पादन वित्तीय पूँजी के सागर में बुलबुले के समान रह गया है, लूट के बँटवारे के लिए लुटेरे आपस में लड़ रहे हैं, यह सब मार्क्सवाद के

सिद्धान्तों को सच्चा साबित कर रहा है। तो फिर, क्रान्ति के बारे में भी मार्क्सवाद ने जो कहा है वह भी सही है। इतिहास में सामाजिक क्रान्तियों के प्रारम्भिक संस्करण प्रायः विफल होते रहे हैं। पूँजीवाद ने तीन सौ वर्ष लम्बे संघर्ष और कई-कई पराजय के बाद सामन्तवाद को निर्णायक रूप से परास्त किया था। सर्वहारा क्रान्ति तो केवल तीन सौ वर्ष पुराने पूँजीवाद के विरुद्ध नहीं पाँच हज़ार वर्ष पुराने पूरे वर्ग-समाज के विरुद्ध क्रान्ति है, निजी सम्पत्ति की समूची व्यवस्था, मूल्यों-मान्यताओं-संस्कारों के विरुद्ध इतिहास की सबसे आमूल परिवर्तनवादी क्रान्ति है। यह इतिहास की पहली सचेतन क्रान्ति है। हर प्रकार की वर्गीय सत्ता और वर्गीय संस्थाओं का समूल उच्छेदन करने वाली क्रान्ति है जिसके लिए समस्त समष्टिगत शक्ति के व्यापकतम-सूक्ष्मतम और जटिलतम प्रयोग की आवश्यकता होती है। यह ऐतिहासिक मिशन केवल वही वर्ग पूरा कर सकता है जिसके पास खोने के लिए सिर्फ़ अपनी बेड़ियाँ हैं और पाने के लिए सारा विश्व है। केवल सर्वहारा वर्ग ही इस क्रान्ति को अंजाम दे सकता है।

1917 को तो अभी सिर्फ़ 89 साल बीते हैं। 1976 को सिर्फ़ तीस साल ही तो हुए हैं। फिर, मायूसी कैसी? ये समस्याएँ हमारे लिए सोचने का सबब हैं, चिन्तन और चिन्ता का सबब हैं, पर निराशा के सागर में डूबने-उतराने का सबब ये क़तई नहीं हो सकतीं।

आज हमारे सामने प्रश्न अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करणों के निर्माण का है। इतिहास कभी भी अपनेआप को हूबहू नहीं दोहराता है, या यूँ कहें कि क्रान्तियों की कार्बन कॉपी नहीं की जा सकती। वर्तमान अतीत से सीखकर भविष्य का निर्माण करता है, अतीत के साँचे में भविष्य को नहीं ढाला जा सकता है। इतिहास में प्रायः ऐसा होता रहा है कि महान क्रान्तियों का आलोचनात्मक विवेक के साथ अध्ययन करने के बजाय प्रायः उनके नारों, मार्ग और मॉडल का अनुकरण करने की कोशिश की जाती है। पर ऐसा करके अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करण की सर्जना क़तई नहीं की जा सकती। हमारा पहला काम है कि विश्व सर्वहारा क्रान्ति के लम्बे इतिहास के चार मील के पथरों – पेरिस कम्यून, अक्टूबर क्रान्ति, चीनी क्रान्ति और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति – का गहन अध्ययन करें। खासकर आखिरी मुक़ाम, 1966-76 तक चीन में माओ के नेतृत्व में पूँजीवादी पुनर्स्थापना रोकने के लिए किये गये शानदार प्रयोगों और मार्क्सवादी विज्ञान में किये गये इज़ाफ़े का अध्ययन करें। इस मुक़ाम ने सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान को जो सर्वतोमुखी समृद्धि प्रदान की, उसे आत्मसात करें और इस विचारधारात्मक सम्पदा के आधार पर आज की दुनिया को जानने-समझने की कोशिश करें। हमें अतीत की क्रान्तियों से मार्गदर्शक सिद्धान्तों के रूप में विचारधारात्मक सारतत्त्व को लेना है। उन क्रान्तियों की रणनीति, आम रणकौशल, क्रान्ति के मार्ग, प्रचार और उद्वेलन के नारों आदि-आदि से हम टुकड़ों में कुछ सीख सकते हैं, कुछ आइडिया ले सकते हैं, लेकिन उन्हें हूबहू उधार नहीं ले सकते। परिस्थितियों को सिद्धान्त के साँचे में फिट नहीं किया जा सकता बल्कि परिस्थितियों का अध्ययन करके सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है।

लेनिन के समय से ही नहीं, माओ के जीवनकाल से भी आज की दुनिया काफी कुछ बदल चुकी है। यह सही है कि हम आज भी साम्राज्यवाद के युग में जी रहे हैं, लेकिन दुनिया की परिस्थितियों में काफी बदलाव आये हैं। राष्ट्रीय प्रश्न आज लगभग समाप्त हो चुका है। तीसरी दुनिया के भी अधिकांश देशों में पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा आज जनमुक्ति-संघर्ष का भागीदार नहीं हो सकता। तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में शासक पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद का कनिष्ठ साझेदार है। वह साम्राज्यवाद से लड़ता-झगड़ता भी है तो जनता की लूट में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए। तीसरी दुनिया के लगभग सभी देशों में पूँजी और श्रम के बीच का अन्तरविरोध आज का प्रधान अन्तरविरोध बन चुका है। लेनिन के समय में वित्तीय पूँजी के निर्यात के तौर-तरीकों से काफी हद तक भिन्न और नये रूपों में भी आज पूँजी का निर्यात हो रहा है। राष्ट्रीय निगमों का ज़बरदस्त विस्तार हुआ है और उनकी प्रकृति और कार्य-प्रणाली में भी काफी बदलाव आया है। वित्तीय पूँजी के निर्यात के नये-नये तौर-तरीके विकसित हुए हैं जिसने राष्ट्र-राज्यों की भूमिका में महत्त्वपूर्ण बदलाव किये हैं। यह तो तय है कि राष्ट्र-राज्यों की भूमिका पूँजीवाद के रहते बनी रहेगी लेकिन इसमें आज काफी बदलाव आये हैं।

विश्व पूँजीवादी तन्त्र के सारतत्त्व और स्वरूप, दोनों में काफी परिवर्तन आये हैं। उत्पादक और अनुत्पादक पूँजी का अनुपात आज एक के मुकाबले तीन से भी अधिक हो चुका है। सर्वहारा वर्ग की संगठनबद्धता की चेतना को उन्नत तकनोलॉजी और सोची-समझी राजनीतिक रणनीति के तहत शासक वर्ग पूरी दुनिया में खण्ड-खण्ड बाँटने की कोशिश में लगा हुआ है। एक हद तक उसे इसमें सफलता भी मिली है। बड़े कारखानों में होने वाले कामों को छोटे-छोटे कारखानों में बिखरा देने, उत्पादन को छोटी-छोटी घरेलू इकाइयों तक में बाँट देने से लेकर एक ही माल के अलग-अलग हिस्से अलग-अलग देशों तक में बनाने जैसे तरीके अपनाकर सर्वहारा वर्ग को बड़े पैमाने पर एकजुट होने से रोकने की नयी-नयी तरकीबें निकाली जा रही हैं। इन सबने सर्वहारा वर्ग में कमज़ोर और बिखरे होने का अहसास एक हद तक पैदा किया है। लेकिन इसका एक दूसरा पहलू भी है। उत्पादन को दुनियाभर में इस प्रकार बाँट देने से एक नयी परिघटना सामने आयी है, बुद्धिजीवी लोग जिसे 'ग्लोबल असेम्बली लाइन' का नाम देते हैं, जिसने सर्वहारा की वैश्विक एकजुटता का एक नया आधार मुहैया कराया है।

इन तमाम परिस्थितियों को समझकर ही अक्टूबर क्रान्ति के उस नये संस्करण की सर्जना की जा सकती है जो विश्व पूँजीवाद और सर्वहारा वर्ग के बीच विश्व ऐतिहासिक महासमर के दूसरे चक्र का पहला मील का पत्थर बनेगा।



दुनिया की परिस्थितियों में आये इन सारे बदलावों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आज नवजनवादी क्रान्ति की मंज़िल चन्द्र एक देशों को छोड़कर दुनिया में कहीं नहीं रह गयी है। लेकिन आज भी कुछ लोग माओ के अवदानों को सही ढंग से अपनाने की

जगह उनसे नवजनवादी क्रान्ति का मॉडल उधार लेकर लागू करने की कोशिश में लगे हुए हैं। ये विचारधारा और कार्यक्रम का अन्तर ही नहीं समझते। नयी परिस्थितियों का अध्ययन कर अपनी रणनीति बदलने के बजाय ये लोग पुराने जूते में फिट करने के लिए पैर को ही काटने में जुटे हुए हैं।

तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में नवजनवादी क्रान्ति की मंज़िल तो आज नहीं रह गयी है लेकिन यहाँ आज समाजवादी क्रान्ति भी वही नहीं होगी जिसकी बात मार्क्स ने की थी या जो रूस में सम्पन्न हुई थी। रूस की अक्टूबर क्रान्ति विशेष परिस्थितियों में सफल हुई थी। रूस पूरब और पश्चिम के पुल पर था, रूस जैसे देश ज़्यादा नहीं थे। वहाँ जो क्रान्ति हुई वह उस समय केवल रूस में ही सम्भव थी। वह समाजवादी क्रान्ति थी लेकिन उसे आसन्न बुर्जुआ क्रान्ति के कार्यभारों को भी पूरा करना था। इसके अलावा, रूसी बुर्जुआ वर्ग इस क्रान्ति के प्रति सावधान नहीं था। 1905-07 की क्रान्ति के बुरी तरह कुचल दिये जाने के बाद वह ज़ारशाही के पतन की बात तो सोचता था और फ़रवरी 1917 में मुख्यतः मेहनतकशों की ताक़त के बल पर उसने राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा भी जमा लिया था लेकिन उसे क़तई यह अनुमान नहीं था कि कुछ ही महीनों के बाद बोल्शेविक वहाँ सत्ता पर क़ब्ज़ा भी कर सकते हैं। प्रमुख साम्राज्यवादी देशों के आपसी युद्ध में उलझे होने का लाभ भी सोवियत क्रान्ति को मिला। इस रूप में अक्टूबर क्रान्ति विशिष्ट परिस्थितियों में हुई एक विशिष्ट क्रान्ति थी।

आज खासकर तीसरी दुनिया के उन देशों में एक नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति की परिस्थितियाँ पैदा हुई हैं, जिनकी उत्पादक शक्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक उन्नत हैं। बुनियादी उद्योग काफी विकसित हो चुके हैं और कृषि अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़ है। इन देशों में भारत भी है। ब्राज़ील, अर्जेंटीना, मेक्सिको, चीले, मिस्र, इण्डोनेशिया, मलेशिया, दक्षिण अफ़्रीका जैसे देश इनमें अग्रिम पंक्ति में हैं। इन देशों में होने वाली साम्राज्यवाद विरोधी-पूँजीवाद विरोधी क्रान्तियाँ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में यूरोप के देशों में सम्भावित क्रान्तियों से भी भिन्न होंगी।

भारत जैसे देश का उदाहरण लें, जहाँ आज सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी पचास करोड़ से भी अधिक हो चुकी है। आज भी हमारे देश में आबादी का लगभग साठ प्रतिशत गाँवों में बसता है लेकिन गाँवों में भी पूँजीवादी उपक्रमों का तेज़ी से फैलाव हो रहा है और खेती मुख्यतः पूँजीवादी खेती बन चुकी है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे-छोटे उद्योगों के अलावा एग्री-बिज़नेस का तेज़ी से प्रसार हो रहा है जिनमें ग्रामीण सर्वहारा की बड़ी आबादी लगी है। भारत के देहात में पूँजी का फैलाव रूस में क्रान्ति के समय से कई गुना अधिक हो चुका है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रव्रजन और किसानों के विभेदीकरण की रफ़्तार बेहद तेज़ है। शहरीकरण अभूतपूर्व गति से बढ़ रहा है। बड़े शहरों के इर्द-गिर्द औद्योगिक बस्तियों के फैलाव के अलावा छोटे शहरों के बड़े शहर बनने और कस्बों तथा ग्रामीण बाज़ारों के शहर बनने की प्रक्रिया लगातार जारी है। देश के तटवर्ती इलाकों और कच्चे माल से समृद्ध इलाकों में नये औद्योगिक नगर उग आये हैं। सैकड़ों की संख्या में बन रहे एसईजेड इस

प्रक्रिया को और तेज़, और बड़ा बनायेंगे। आज से दो दशक आगे के भारत की कल्पना करें तो तस्वीर एकदम अलग दिखायी देती है। ब्राज़ील सहित लातिन अमेरिका के कई देशों में तो आधी से अधिक आबादी शहरी हो चुकी है। औद्योगिक अर्थव्यवस्था से ग्रामीण अर्थव्यवस्था बहुत पीछे छूट चुकी है। अक्टूबर क्रान्ति में हिस्सा लेने वाले सर्वहारा वर्ग की तादाद से कई गुना अधिक सर्वहारा आज इन देशों में क्रान्ति की कृतारों में शामिल होने के लिए मौजूद है। शहरी और ग्रामीण सर्वहारा, छोटे-मोटे रोजी-रोज़गार करने वाले अर्द्धसर्वहाराओं की भारी आबादी और ग़रीब किसान आबादी आज इन देशों की बहुसंख्यक आबादी बन चुकी है।

किसान प्रश्न आज भी उपस्थित है। क्रान्ति की कोतल सेना (रिज़र्व आर्मी) आज भी किसान ही होंगे, लेकिन आज केवल निम्न-मध्यम किसान तक ही क्रान्ति के साथ खड़े हो सकते हैं। खुशहाल मध्यम किसान तक आज समाजवाद के नारे के पक्ष में नहीं खड़े होने वाले। यह कहा जा सकता है कि कृषि प्रश्न के समाधान का फ़्रेमवर्क अब अल्पकालिक अवधि के लिए भी बुरुज़ा जनवादी नहीं हो सकता। उसका समाधान केवल समाजवादी क्रान्ति के फ़्रेमवर्क में ही हो सकता है। तीसरी दुनिया के शासक वर्ग साम्राज्यवाद के साथ लूट के माल में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए दबाव डालने के लिए सौदेबाज़ी में पलड़ा अपनी ओर झुकाने के लिए जनता के आन्दोलनों को बटखरे की तरह इस्तेमाल करते हैं। साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध राष्ट्रीय मुक्ति का नारा देने वाले लोग आज ऐसे ही बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो रहे हैं, क्योंकि पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा साम्राज्यवाद-विरोधी क्रान्तिकारी संघर्ष का आज भागीदार नहीं हो सकता। देशी पूँजी की सत्ता के विरुद्ध लड़ते हुए ही आज साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ा जा सकता है। आज कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के अनेक धड़े, जो लाभकारी मूल्यों के लिए और लागत मूल्यों में कमी के लिए धनी किसानों और खुशहाल मध्यम किसानों के आन्दोलनों में अपनी ताकत लगा रहे हैं वे भी ऐसे ही बटखरों का काम कर रहे हैं।

यह नयी समाजवादी क्रान्तियों का दौर है

आज की नयी क्रान्तियों का मार्ग भी पहले की क्रान्तियों से भिन्न होगा। यह दीर्घकालिक लोकयुद्ध जैसा तो नहीं ही हो सकता, लेकिन यह अक्टूबर क्रान्ति जैसा भी नहीं हो सकता है। बुरुज़ा सत्ता ने न केवल देश के सुदूर इलाकों तक अपने सामाजिक आधारों का विस्तार किया है बल्कि उसकी सामरिक शक्ति, तकनीक और रणकौशल भी बहुत अधिक विकसित हो चुके हैं। पूरे देश को प्रशासनिक तन्त्र और यातायात-संचार के साधनों से बाँध दिया गया है। नाना प्रकार की वित्तीय-व्यापारिक संस्थाओं के ज़रिये पूँजी की जकड़बन्दी से देश का शायद ही कोई हिस्सा अछूता रह गया है। लेनिनकालीन देशों के मुक़ाबले आज की पूँजीवादी सत्ता ने गाँवों में अपने सामाजिक अवलम्बों का अत्यन्त योजनाबद्ध ढंग से विस्तार किया है। मज़दूरों के बीच से एक कुलीन संस्तर तीसरी दुनिया के अपेक्षाकृत उन्नत देशों में भी विकसित हुआ है।

हालाँकि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों ने इसके एक हिस्से पर चोट की है लेकिन एक बड़ा हिस्सा अभी भी मज़दूर वर्ग के ग़दरों के सामाजिक आधार का काम कर रहा है। मध्यवर्ग के एक बहुत बड़े हिस्से को ग़रीब जनता से लूटे गये मुनाफ़े के टुकड़े बाँटकर व्यवस्था का पैरोकार बना लिया गया है। शहरी मध्यवर्गीय आबादी का भी एक बड़ा हिस्सा आज पूरी तरह इस व्यवस्था के पक्ष में खड़ा है।

आज भी किसी बुर्जुआ सत्ता को आम बगावत के ज़रिये ही चकनाचूर किया जा सकता है, लेकिन उस निर्णायक मुक़ाम तक पहुँचने की प्रक्रिया दीर्घकालिक होगी। पूँजी और श्रम के बीच मोर्चा बाँधकर लड़ाई (पोजीशनल वार) का लम्बा सिलसिला चलेगा जिसमें कई बार सर्वहारा की ताक़तों को आगे बढ़कर पीछे हटना पड़ सकता है। उन्हें विभिन्न रचनात्मक तरीकों से समाज में अपनी जड़ें गहरे जमानी होंगी। नेपाल जैसी क्रान्ति आज एक अपवाद है। यह वस्तुतः बीसवीं सदी की क्रान्ति है, विश्व सर्वहारा क्रान्ति का बैकलॉग है। यह इक्कीसवीं सदी की पथप्रदर्शक क्रान्ति नहीं हो सकती। इन्हीं भिन्नताओं के आधार पर आज हम कहते हैं कि यह एक नया दौर है। नयी समाजवादी क्रान्तियों का दौर है। ये क्रान्तियाँ विचारधारा, राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाजवादी संक्रमण की प्रकृति विषयक चिन्तन, पार्टी सिद्धान्त जैसे सभी पक्षों को समृद्ध करते हुए आगे विकसित होंगी। ये क्रान्ति के विज्ञान को और समृद्ध बनायेंगी, क्रान्ति के शस्त्रागार में नये इज़ाफ़े करेंगी। मार्क्सवाद कोई जड़सूत्र नहीं बल्कि कर्मों का मार्गदर्शक विज्ञान है। उन्नत धरातल का व्यवहार सिद्धान्त को भी उन्नति की अगली ऊँचाइयों पर ले जायेगा।

एक नये सर्वहारा नवजागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभारों को पूरा करना होगा

आज पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता के सामने विचारधारा और इतिहासबोध का प्रश्न एक अहम प्रश्न है। बुर्जुआ मीडिया का प्रचारतन्त्र दिनोरात समाजवाद के बारे में झूठ का अम्बार खड़ा करने में जुटा हुआ है। हमारे महानायकों के बारे में धिनौना कुत्सा-प्रचार लगातार जारी रहता है। 1976 के बाद के दिनों में सयानी हुई नयी पीढ़ियों को सर्वहारा क्रान्तियों के गौरवशाली अतीत, क्रान्तिकारियों के विराट व्यक्तित्व और कुर्बानियों और समाजवाद की महान उपलब्धियों के बारे में बहुत कम जानकारी है। ऐसे में आज के क्रान्तिकारियों के सामने यह एक अहम कार्यभार है कि मेहनतकश जनता को और खासकर युवा आबादी को महान क्रान्तिकारी इतिहास और उपलब्धियों से परिचित कराया जाये। मेहनतकश जनता के युवा सपूतों को पहले तो यही बताना होगा कि मार्क्सवाद के सिद्धान्त कहते क्या हैं। उन्हें यह बताना होगा कि उनके पूर्वजों ने किस तरह इन सिद्धान्तों के मार्गदर्शन में महान सामाजिक प्रयोगों को अमल में उतारा और विज्ञान को नयी समृद्धि दी। उन्हें समाजवाद के दौर में हुई अभूतपूर्व प्रगति के बारे में बताने की ज़रूरत है जिसे देखकर पूँजीवादी दुनिया को दाँतों तले उँगली दबानी

पड़ गयी थी। कुछ ही वर्षों में समाजवाद ने आम जनता को अभावों और अपमान की बेड़ियों से आज़ाद कर जीवन की तमाम बुनियादी ज़रूरतें उपलब्ध करा दी थीं। समाजवाद ने जनता को केवल भौतिक ही नहीं वह सांस्कृतिक और आत्मिक सम्पदा भी प्रदान की जिससे शोषक वर्गों ने उसे वंचित कर रखा था। उन्हें बताना होगा कि जब जनता की सर्जनात्मकता निर्बन्ध हुई तो उसने कैसे चमत्कार कर दिखाये। मानवता के इतिहास में पहली बार स्त्रियाँ चूल्हे-चौखट की गुलामी से आज़ाद हुईं और एक नये समाज के निर्माण के लिए पुरुषों के साथ क़दम से क़दम मिलाकर चलीं। समाजवाद की शानदार और महान उपलब्धियों के ठोस आँकड़े मौजूद हैं जिन्हें खुद बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों, इतिहासकारों और राजनेताओं ने स्वीकारा है। लेकिन आज इन सबको झूठ के पर्दे के पीछे धकेल दिया गया है। उन ऐतिहासिक घटनाओं, बलिदानों और उपलब्धियों को भुलाया जा चुका है। इनके प्रभाव में अनेक वामपन्थी बुद्धिजीवी तक बीसवीं सदी को विफलता की सदी कहते हुए मिल जायेंगे। हमें अपने इस गौरवशाली अतीत की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों उपलब्धियों को लोगों के सामने लाना होगा।

इसीलिए आज हम नये सर्वहारा नवजागरण की बात करते हैं। इसका अर्थ अतीत को दोहराना नहीं है, लेकिन अतीत को जाने बिना आगे बढ़ना भी मुश्किल है। आज सर्वहारा वर्ग की हरावल शक्तियों के सामने यह एक अहम कार्यभार है। आज दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जो सर्वहारा क्रान्ति का आधारक्षेत्र हो, जिसकी ओर दुनिया की जनता दिशा और प्रेरणा के लिए देख सकती हो। आज मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्तालिन-माओ जैसा कोई सर्वमान्य अन्तरराष्ट्रीय नेता नहीं है। क्रान्ति की शक्तियाँ बेहद बिखरी हुईं और कमज़ोर हैं। ऐसे में यह काम बेहद कठिन है। लेकिन इसकी क़तई अनदेखी नहीं की जा सकती। इसीलिए हम पुरज़ोर ऊँची आवाज़ में नये सर्वहारा नवजागरण का नारा बुलन्द करते हैं। लेकिन जैसाकि हम पहले भी कह चुके हैं, भावी क्रान्तियाँ हूबहू अतीत की क्रान्तियों के नक्शे-क़दम पर नहीं चलतीं। केवल विगत सर्वहारा क्रान्तियों की उपलब्धियों से परिचित होनेमात्र से ही हमारा उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। हमें अतीत की क्रान्तियों से काफ़ी कुछ लेना होगा। साथ ही, आज की परिस्थितियों का अध्ययन करके नये नतीजे निकालने होंगे और नयी क्रान्ति की रणनीति और आम रणकौशल विकसित करने होंगे। यह प्रक्रिया गहन सामाजिक प्रयोग, उनके सैद्धान्तिक समाहार, वाद-विवाद, विचार-विमर्श और फिर नयी क्रान्तियों की प्रकृति, स्वरूप एवं रास्ते से मुक्तकामी जनता को परिचित कराने की सुदीर्घ प्रक्रिया होगी। इस पहलू के मद्देनज़र हम नये सर्वहारा प्रबोधन की बात करते हैं। आज पूरी दुनिया के मूलाधार और अधिरचना में आये व्यापक परिवर्तनों का हमें अध्ययन करना होगा। कहने की ज़रूरत नहीं कि अध्ययन की यह प्रक्रिया सामाजिक प्रयोगों और सघन वाद-विवाद के ज़रिये तथा प्रयोगों से निगमित निष्कर्षों के आधार पर आम जनता के बीच व्यापक राजनीतिक प्रचार और फिर नये सामाजिक प्रयोगों की प्रक्रिया के साथ ही चल सकती है। इस पहलू को हम एक नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार के रूप में रेखांकित करते हैं। थोड़े में इन दोनों को मिलाकर

कहें तो, क्रान्तियों के इतिहास से आवश्यक सबक लेना तथा आज की दुनिया की नयी परिस्थितियों के आधार पर अपने सिद्धान्तों एवं व्यवहार को आगे विस्तार देना। यही नये सर्वहारा नवजागरण और प्रबोधन का ऐतिहासिक सारतत्त्व है। ज़ाहिरा तौर पर, इसका एक पहलू विचारधारा से जुड़ेगा, एक पहलू राजनीतिक अर्थशास्त्र से जुड़ा होगा, एक पहलू कला-साहित्य-संस्कृति की सैद्धान्तिकी से सम्बन्ध रखेगा, एक पहलू समाजवादी संक्रमण की प्रकृति की समझ से जुड़ा होगा और एक पहलू आज की नयी लेनिनवादी पार्टी की अवधारणा को समृद्धि प्रदान करेगा।

यह अनायास नहीं है कि आज कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर के भीतर से अर्थवादी (यानी वे जो आर्थिक संघर्षों पर जोर देते हुए राजनीतिक संघर्ष को तिलांजलि दे चुके हैं या आर्थिक संघर्षों को ही आगे बढ़ाते हुए राजनीतिक संघर्षों तक ले जाने की सोच रखते हैं); अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी (यानी वे जो मज़दूर वर्ग की स्वतःस्फूर्त कार्रवाइयों या जनसंगठनात्मक गतिविधियों से सर्वहारा पार्टी बन जाने का मुगालता पाले हुए हैं); लोकरंजकतावाद की हवा मिठाई बेचने वाले फेरी वाले; तमाम क्रिस्म के नवसंशोधनवादी; कठमुल्लावादी मुदरिस और पटवारी और क्रान्ति की कृतारों से भागकर घाघरों में शरण लिये हुए नक़ली चिन्तक — ये सारी जमातें हमारे इन्हीं नारों पर चोट करती हैं। इन्हें वर्ग-संघर्ष के कार्यभारों से हटना बताती हैं (उनके लिए वर्ग-संघर्ष का मतलब केवल मज़दूर वर्ग के आर्थिक संघर्ष ही हैं) और हमारे ऊपर तरह-तरह की तोहमतें मढ़ती हैं।

इन नारों को समझे बिना हम आज के अपने कार्यभारों को सही ढंग से अंजाम नहीं दे सकते। अनायास नहीं है कि तमाम भगोड़े झींगुर अपनी असलियत को छिपाने के लिए इन्हीं नारों के विरुद्ध ज़रूरत से ज़्यादा शोर मचाते हैं।

ये गधे यह नहीं समझ पाते कि नये सर्वहारा प्रबोधन में नयी परिस्थितियों को समझने का जो कार्यभार है, उसे किताबी कीड़े और चिन्तक का बाना धारण कर लेने वाले बौने विदूषक पूरा नहीं कर सकते। यह प्रक्रिया सामाजिक प्रयोगों के दौरान ही आगे बढ़ सकती है। ये कूपमण्डूक तिलचट्टे यह नहीं समझ पाते कि एक नये सर्वहारा नवजागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभारों को तिलस्मों के द्वारा नहीं बल्कि एक क्रान्तिकारी मानव उपादान के द्वारा अंजाम दिया जायेगा और वह क्रान्तिकारी मानव उपादान प्रयोग-सिद्धान्त-प्रयोग की प्रक्रिया में ही तैयार होगा।

तीसरी दुनिया के जिन देशों में आज नयी समाजवादी क्रान्ति की ज़मीन पक रही है, उनमें भारत प्रातिनिधिक स्थिति में है। लेकिन आज यहाँ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर लगभग विघटित हो चुका है। कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के भीतर बोल्शेविज़्म के उसूल मुख्यतः क्षरित हो चुके हैं। पुराने संशोधनवादी भाकपा, माकपा, भाकपा (माले-लिबरेशन) तो पहले से ही नंगे हो चुके हैं, पर सबसे घातक संशोधनवादी तो वे हैं जो माओ विचारधारा या माओवाद और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की बातें करते हुए अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद कर रहे हैं, बोल्शेविज़्म के नाम पर मेशेविक पार्टी-ढाँचा चला रहे हैं। एक ओर पुरानी नवजनवादी क्रान्ति की सलीब को ढोते हुए नामधारी मार्क्सवादी रह गये संगठन

हैं जो धनी किसानों और कुलकों की माँगों पर आन्दोलन करते हुए वस्तुतः नरोदवादी बन चुके हैं। दूसरी ओर “वामपन्थी” जुनून में काम करने वाले संगठन हैं जो कार्यक्रम के धरातल पर नरोदवादी आचरण करते हुए विचारधारा के स्तर पर घनघोर “वामपन्थी” दुस्साहसवाद के शिकार हैं। ये मार्क्सवादी विज्ञान से कोसों दूर हैं और अपनी तमाम सदृच्छाओं के बावजूद अपनी जुनूनी हरकतों से मजदूर वर्ग के लक्ष्य को नुकसान ही पहुँचा रहे हैं। यही है आज विघटित हो चुके कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की तस्वीर। शिविर का जो विघटन छत्तीस वर्ष पहले शुरू हुआ था, एकता की तमाम गुहारों और कोशिशों के बावजूद आज लगभग पूरा हो चुका है। मूल बात यह है कि अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों की संरचना ही बोल्शेविक नहीं रह गयी है तो फिर इन्हें मिलाने से कोई अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी भला कैसे बन सकती है।

इसीलिए आज नयी बोल्शेविक भर्ती और ट्रेनिंग का काम बेहद अहम बन गया है। पार्टी निर्माण और पार्टी गठन के दो द्वन्द्वात्मक पहलुओं में आज निर्माण का पहलू प्रधान है। नये बोल्शेविक तत्त्वों की भर्ती और तैयारी किये बिना अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी नहीं खड़ी की जा सकती। इस पहलू को एक नये सर्वहारा नवजागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के पहलू से अलग करके नहीं देखा जा सकता। जब हम नये बोल्शेविक तत्त्वों की भर्ती की बात करते हैं तो पुरानी कृतारों की अनदेखी की बात कोई मूर्ख ही सोच सकता है। अगर हम आम राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई पर बल देते हैं तो कोई गधा यह समझ ले कि हम रोज़मर्रा के राजनीतिक संघर्षों और मेहनतकश अवाम के बीच की जाने वाली जनकार्रवाइयों को पूरी तरह तिलांजलि दे देते हैं, तो उस गधे को बृहस्पति और शुक्राचार्य भी नहीं समझ सकते। क्योंकि बात समझ की है ही नहीं, बात तो नीयत की है।

आज अक्टूबर क्रान्ति की शिक्षाएँ हमें याद दिलाती हैं कि लेनिन के समय की तरह से आज भी हमें वाम और दक्षिण अवसरवाद के प्रेतों से जूझते हुए, अडिग होकर अपने रास्ते पर आगे बढ़ना होगा।

(बिगुल, नवम्बर 2006 अंक में प्रकाशित)

मई दिवस अनुष्ठान नहीं, संकल्पों को फ़ौलादी बनाने का दिन है!

एक बार फिर मुक्ति का परचम उठाओ!

पूँजी की बर्बर सत्ता के खिलाफ़
फ़ैसलाकुन लड़ाई की तैयारी में जुट
जाओ!!

इक्कीसवीं सदी को मज़दूर क्रान्ति की
मुकम्मल जीत की सदी बनाओ!!!

मज़दूर वर्ग के लिए सबसे बुरी बातों में से एक शायद यह है कि मई दिवस को आज एक अनुष्ठान बना दिया गया है। यह मई दिवस के महान शहीदों का अपमान है। मई दिवस मज़दूरों के मक्कार, फ़रेबी, नक़ली नेताओं के लिए महज़ झण्डा फहराने, जुलूस निकालने, भाषण देने की एक रस्म हो सकता है, लेकिन वास्तव में यह उन शहीदों की कुर्बानियों की याददिहानी का एक मौक़ा है, जिन्होंने अपनी जिन्दगी देकर पूरी दुनिया के मज़दूरों को यह सन्देश दिया था कि उन्हें अलग-अलग पेशों और कारख़ानों में बँटे-बिखरे रहकर महज़ अपनी पगार बढ़ाने के लिए लड़ने के बजाय एक वर्ग के रूप में एकजुट होकर अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा। काम के घण्टे कम करने की माँग उस समय की सर्वोपरि राजनीतिक माँग थी।

मई दिवस के शहीदों की कुर्बानी बेकार नहीं गयी। जल्दी ही काम के घण्टों पर संघर्ष की लहर अमेरिका से यूरोप तक और फिर पूरी दुनिया में फैल गयी। पूँजीपति वर्ग की सरकारें विकसित पूँजीवादी देशों से लेकर उपनिवेशों तक में आठ घण्टे के कार्यदिवस का क़ानून बनाने के लिए बाध्य हो गयीं। यही नहीं, मज़दूरों की जुझारू वर्ग चेतना से आतंकित दुनिया के अधिकांश देशों की पूँजीवादी सत्ताएँ श्रम क़ानून बनाकर किसी न किसी हद तक मज़दूरों को चिकित्सा, आवास आदि बुनियादी सुविधाएँ, तथा यूनियन बनाने का अधिकार देने, न्यूनतम मज़दूरी तय करने और जब मर्जी रोज़गार छीन लेने जैसी मालिकों की निरंकुश हरकतों पर बन्दिशें लगाने के लिए मजबूर हो गयीं। इसीलिए यह कहा जाता है कि मई दिवस दुनिया के मेहनतकशों के राजनीतिक चेतना के युग में प्रवेश करने का प्रतीक दिवस है। मई, 1886 ने यह संकेत दे दिया था कि बीसवीं सदी में श्रम की ताक़त संगठित होकर पूँजी की सत्ता को झक़झोर देने वाले विकट, भूकम्पकारी तूफ़ानों को जन्म देने वाली है।

यदि इस बुनियादी बात को ही भुला दिया जाये तो फिर मई दिवस मनाने का भला क्या मतलब रह जाता है? लेकिन सच तो यही है कि आज इस बुनियादी बात को ही भुला दिया गया है। चुनावी पार्टियों के पिछलग्गू वे तमाम ट्रेडयूनियनबाज़ घाघ मई दिवस का परचम लहरा रहे हैं जिनका काम ही मज़दूरों को महज़ दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई में उलझाये रखकर अपना उल्लू सीधा करना है, अपने आकाओं की चुनावी गोट लाल करना है और एक धोखे की टट्टी के रूप में इस व्यवस्था की हिफ़ाज़त करना है। पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी (सरकार) में मज़दूरों का महकमा देखने वाला मुलाजिम (श्रम मन्त्री) लगातार मज़दूरों को ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़ने और उजरती गुलामी की डण्डा-बेड़ियों को मज़बूत करने के क़ानूनी बन्दोबस्त करता रहता है और मई दिवस के दिन देश के मज़दूरों के नाम सन्देश जारी करता है। और हद तो तब हो जाती है जब पता चलता है कि कई एक कारख़ानों के मालिकान भी मई दिवस के दिन मज़दूरों को लड्डू बँटवाते हैं या यूनियन-मैनेजमेण्ट मिलकर प्रीतिभोज का आयोजन करते हैं। मई दिवस के शहीदों का भला इससे बढ़कर भी कोई अपमान हो सकता है?

इससे अधिक अफ़सोस की बात क्या हो सकती है कि इतिहास के जिस दौर में, विगत एक शताब्दी से भी अधिक समय के दौरान मज़दूर वर्ग की राजनीतिक लड़ाई सबसे अधिक कमज़ोर अवस्था में दिख रही है, ऐन उसी दौर में उस महान मई दिवस के अर्थ और महत्त्व को सबसे अधिक विकृत-विघटित कर दिया गया है। मज़दूर वर्ग को अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद और संसदवाद की चौहद्दी से बाहर निकालकर, ब्यापक मज़दूर एकता की ज़मीन पर राजनीतिक संघर्षों को संगठित करने की शुरुआत करके ही आज हम मई दिवस की गरिमा वास्तव में बहाल कर सकते हैं और सही मायने में मई दिवस के महान शहीदों की शानदार परम्परा के सच्चे वारिस बन सकते हैं।



आम मज़दूर साथियों के लिए यह बेहद ज़रूरी है कि वे राजनीतिक संघर्ष और आर्थिक संघर्ष के बीच के अन्तर को भलीभाँति समझ लें। तभी उन्हें मई दिवस के ऐतिहासिक महत्त्व का वास्तव में भान हो सकेगा। किसी कारख़ाना या उद्योग विशेष में काम करते हुए मज़दूर अपनी पगार, पेंशन भत्ते आदि को लेकर आर्थिक संघर्ष करते हैं और इस प्रक्रिया में उन्हें अपनी संगठित शक्ति का अहसास होता है तथा वे लड़ना सीखते हैं। लेकिन अलग-अलग उद्योगों या कारख़ानों के मज़दूर अपने-अपने मालिकों के खिलाफ़ अलग-अलग आर्थिक लड़ाइयाँ लड़ते हैं उनकी यह लड़ाई एक समूचे वर्ग के रूप में, समूचे पूँजीपति वर्ग के खिलाफ़ नहीं होती। लेकिन साथ ही, वे कुछ ऐसी रोज़मर्रा की लड़ाइयाँ भी लड़ना शुरू करते हैं जो समूचे मज़दूर वर्ग की साझा माँगों को लेकर होती हैं – जैसे आवास, स्वास्थ्य आदि सुविधाओं की माँग, पक्की नौकरी की गारण्टी या ठेका प्रथा की समाप्ति की माँग (सभी मज़दूरों के लिए) न्यूनतम मज़दूरी तय करने की माँग या काम के घण्टे निर्धारित करने की माँग आदि। ये रोज़मर्रा की लड़ाइयाँ आगे बढ़ती हैं तो सभी पेशों के मज़दूरों को इन आम माँगों पर

एकजुट कर देती हैं और अपने-अपने पेशों से बँधी हुई उनकी संकुचित मनोवृत्ति को तोड़ देती हैं। ये राजनीतिक संघर्ष पूरे पूँजीपति वर्ग और उनकी राज्यसत्ता के खिलाफ़ समूचे मज़दूर वर्ग को एकजुट कर देते हैं और जनता के अन्य वर्गों के साथ भी उनके मोर्चाबन्द होने का आधार तैयार कर देते हैं। मज़दूर वर्ग के ये राजनीतिक संघर्ष पूँजीपति वर्ग की राज्यसत्ता को मजबूर करते हैं कि वह क़ानून बनाकर उनके काम के घण्टे निर्धारित करे, उनकी सेवा-शर्तें तय करे, उनकी नौकरी की सुरक्षा की क़मोबेश गारण्टी दे तथा मालिकों के ऊपर क़ानूनी बन्दिशें लगाकर उन्हें मज़दूरों को विभिन्न बुनियादी सुविधाएँ देने के लिए बाध्य करे ताकि संगठित मज़दूरों की शक्ति पूँजीवादी व्यवस्था के ही सामने अस्तित्व का संकट न खड़ा कर दे। लेकिन किसी भी पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग द्वारा लड़कर हासिल किये जाने वाले राजनीतिक अधिकारों की एक सीमा होती है, जो धीरे-धीरे मज़दूर वर्ग के सामने साफ़ होती जाती है। पूँजीवादी जनवाद का असली चेहरा तब पूँजीपति वर्ग के अधिनायकत्व के रूप में सामने आ जाता है। तब मज़दूर वर्ग इस सच्चाई को समझ लेने की स्थिति में आ जाता है कि असली सवाल पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को ही बदल डालने का है और यह काम पूँजीवादी राज्यसत्ता को चकनाचूर किये बिना अंजाम नहीं दिया जा सकता। राजनीतिक संघर्ष करते हुए ही मज़दूर वर्ग एक संगठित वर्ग के रूप में एकजुट होकर पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध लड़ना सीखता है, उसे पूँजीवादी व्यवस्था के असली रूप और उसकी सीमाओं का अहसास होता है और वह उन सीमाओं को तोड़ने के लिए आगे क़दम बढ़ाता है। राजनीतिक संघर्ष करते हुए ही मज़दूर वर्ग अपने ऐतिहासिक मिशन से परिचित होता है, सर्वहारा क्रान्ति की अपरिहार्यता और अवश्यम्भाविता से परिचित होता है, उस क्रान्ति के विज्ञान को आत्मसात करता है और समाजवादी व्यवस्था के अग्रदूत की भूमिका निभाने के लिए अपने को तैयार करता है।

आर्थिक संघर्ष मज़दूर वर्ग का बुनियादी संघर्ष है। इसके ज़रिये वह लड़ना और संगठित होना सीखता है। मुख्यतः ट्रेडयूनियनों इस संघर्ष के उपकरण की भूमिका निभाती हैं और इस रूप में वर्ग-संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला की भूमिका निभाती हैं। लेकिन आर्थिक संघर्ष मज़दूर वर्ग को सिर्फ़ कुछ राहत, कुछ रियायतें और कुछ बेहतर जीवनस्थितियाँ ही दे सकते हैं। वे पेशागत संकुचित मनोवृत्ति को तोड़कर मज़दूरों को उनकी व्यापक वर्गीय एकजुटता की ताक़त का अहसास नहीं करा सकते। न ही वे उन्हें अपनी मुक्ति की सम्भाव्यता और पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता का अहसास करा सकते हैं। ऐसा केवल राजनीतिक माँगों पर संघर्ष के द्वारा ही सम्भव है।

मज़दूर आन्दोलनों का इतिहास और मज़दूर क्रान्ति का विज्ञान हमें बताता है कि आर्थिक संघर्ष कभी भी अपनेआप, स्वयंस्फूर्त ढंग से राजनीतिक संघर्ष में रूपान्तरित नहीं हो जाते। आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ शुरू से ही मज़दूर वर्ग राजनीतिक संघर्षों को भी चलाये, तभी मज़दूर वर्ग पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध अपने संघर्ष को आगे बढ़ा सकता है। राजनीतिक संघर्ष तब तक रोज़मर्रा के संघर्षों के अंग के तौर पर प्रारम्भिक अवस्था में होते हैं तभी तक ट्रेडयूनियनों के माध्यम से उनका संचालन सम्भव होता है। एक मंज़िल आती है जब

राजनीतिक संघर्ष के लिए सर्वहारा वर्ग के किसी ऐसे संगठन की उपस्थिति अनिवार्य हो जाती है जो सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की सुसंगत समझदारी से लैस हो। यह संगठन पूँजीवाद के आर्थिक ताने-बाने, राजनीतिक तन्त्र और पूरी सामाजिक संरचना को भलीभाँति समझने के बाद उसके विकल्प का खाका पेश करता है; पूँजीवादी राज्यसत्ता को ध्वस्त करके सर्वहारा राज्यसत्ता की स्थापना करने तथा समाजवाद का निर्माण करने के कार्यक्रम और रास्ते से सर्वहारा वर्ग को शिक्षित करता है और उस रास्ते पर आगे बढ़ने में सर्वहारा वर्ग को नेतृत्व देता है। विश्व मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में सर्वहारा वर्ग के हरावल के रूप में ऐसी सर्वहारा पार्टी की धारणा के मूर्त रूप लेते ही ट्रेडयूनियन ऐतिहासिक रूप से “पिछड़े” वर्ग-संगठन की स्थिति में पहुँच गयी। वर्ग-संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला वह आज भी है, लेकिन वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा के मार्गदर्शन में संगठित पार्टी ही पूँजीवादी व्यवस्था का नाश करके सर्वहारा वर्ग की आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक मुक्ति के संघर्ष को अंजाम तक पहुँचा सकती है, यही सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की – मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षा है और बीसवीं सदी के दौरान इतिहास इसे सत्यापित भी कर चुका है।

मज़दूर क्रान्ति की विचारधारा मज़दूर आन्दोलन में अपनेआप नहीं पैदा हो जाती। उसे उसमें बाहर से डालना पड़ता है। यह काम मज़दूर वर्ग के हरावल दस्ते के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी के संगठनकर्ता-कार्यकर्ता अंजाम देते हैं। वे मज़दूरों की रोज़मर्रा की लड़ाइयाँ संगठित करते हुए, पहली ही मंज़िल से उनके बीच लगातार राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा का काम चलाते हैं, आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ राजनीतिक संघर्ष भी संगठित करते हैं, उन्हें क्रमशः उन्नत और व्यापक बनाते हैं, इस प्रक्रिया के दौरान मज़दूरों के सर्वाधिक उन्नत तत्त्वों को विचारधारा से लैस करके हरावल दस्ते (पार्टी) में भर्ती करते हैं तथा उनके माध्यम से ट्रेडयूनियनों व अन्य जनसंगठनों-मोर्चों में पार्टी के विचारधारात्मक मार्गदर्शन एवं राजनीति का वर्चस्व (हेजेमनी) स्थापित करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं।

अर्थवादी मज़दूर वर्ग को तरह-तरह से आर्थिक संघर्षों तक ही सीमित रखने की कोशिश करते हैं, वे मज़दूर वर्ग को राजनीतिक संघर्षों से दूर रखने की या फिर इनके मामले में संयम बरतने की सीख देते हैं। वे यह भी दलील देते हैं कि मज़दूर वर्ग की विचारधारा मज़दूर आन्दोलन के भीतर से स्वयंस्फूर्त ढंग से पैदा हो जाती है। इस तरह वे मज़दूर वर्ग के बीच उसके हरावल दस्तों (पार्टी तत्त्वों) द्वारा सचेतन तौर पर संगठित की जाने वाली राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन की कार्रवाई को अनुपयोगी बताने की कोशिश करते हैं। वे ट्रेडयूनियनवादी भी इन्हीं के सगे-सहोदर होते हैं (प्रायः ये दोनों एक ही होते हैं) जो अपनी सारी क़वायद ट्रेडयूनियन की चौहद्दी तक ही सीमित रखते हैं और इस चौहद्दी के बाहर मज़दूर चेतना के विकास को हर चन्द कोशिश करके रोकते हैं, क्योंकि तब उनका सारा धन्धा ही चौपट हो जाने का ख़तरा रहता है। जो संसदीय वामपन्थी क्रान्ति के बजाय बुर्जुआ संसद और चुनावों के ही ज़रिये समाजवाद ला देने का धोखा भरा प्रचार करते हैं, उनकी राजनीति अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद से ही नाभिनालबद्ध होती है। अपने मूल रूप से ये सभी सुधारवाद की ही विविध अभिव्यक्तियाँ हैं जो मज़दूर वर्ग को यह धोखा भरी नसीहत देती

हैं कि क्रान्ति के बजाय इसी व्यवस्था में सुधारों का पैबन्द लगाकर काम चलाया जा सकता है। संसदीय वामपन्थ और अर्थवाद की राजनीति चूँकि मार्क्सवाद के सारतत्त्व (वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व) में “संशोधन” (यानी वास्तव में तोड़-मरोड़) करने की कोशिश करती है, अतः उसे संशोधनवाद भी कहा जाता है। संशोधनवाद, अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद जैसी धाराएँ मज़दूर वर्ग को सर्वहारा क्रान्ति के मूल विचार से भटकाकर, पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करती हैं। इतिहास बताता है कि मज़दूर आन्दोलन के इन विभीषणों, जयचन्दों, मीरज़ाफ़रों ने पूँजीवाद की इतनी सेवा की है और इतने नाजुक मौकों पर उसकी मदद की है कि उसे याद करके पूँजीपति वर्ग की आँखें भर आयें। यहाँ तक कि जिस समाजवाद का विश्व-पूँजीवाद के बाहरी हमले कुछ न बिगाड़ सके, उसे भी ध्वस्त करने में इन भितरघातियों की ही भूमिका केन्द्रीय रही।



उपरोक्त संक्षिप्त चर्चा के आलोक में मज़दूर साथियों के लिए यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि मई दिवस की परम्परा आज भाँति-भाँति के नकली वामपन्थी मदारियों के हाथों किस कदर लांछित और कलंकित हो रही है। मई दिवस दुनिया के मज़दूरों के राजनीतिक चेतना के युग में — राजनीतिक संघर्षों के युग में प्रवेश का प्रतीक विषय है। लेकिन आज वे संसदीय वामपन्थी, अर्थवादी और ट्रेडयूनियनवादी मई दिवस मनाते हैं, जो मज़दूर वर्ग को आर्थिक संघर्षों और संसदीय राजनीति की भूलभूलैया में फँसाये रखना चाहते हैं। हमें जी-जान से जूझकर उस मुक़ाम तक पहुँचने की तैयारी करनी होगी जब मज़दूर वर्ग आगे बढ़कर इन भाँड़ों-विदूषकों के मुखौटे नोच ले और इनके हाथों से मई दिवस का परचम छिन ले।

बेशक हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं जब विश्वस्तर पर क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है। सर्वहारा क्रान्तियों के जो प्रथम संस्करण बीसवीं सदी में निर्मित हुए थे, वे भविष्य के लिए क़ीमती सबक़ देने के बाद, टूट-बिखर चुके हैं। श्रम और पूँजी के बीच ऐतिहासिक युद्ध का पहला चक्र श्रम-पक्ष की पराजय के साथ पूरा हुआ है। लेकिन यह इतिहास का अन्त नहीं है। पूँजीवाद अजर-अमर नहीं है। इतिहास का तर्क उसके भीतर समाजवाद के और अधिक शक्तिशाली बीजों को विकसित कर रहा है। श्रम और पूँजी के बीच के विश्व ऐतिहासिक महायुद्ध का दूसरा और निर्णायक चक्र इक्कीसवीं सदी में लड़ा जायेगा। इतिहास का यही तर्क है। मानव समाज का गति-विज्ञान यही बताता है।

लेकिन साथ ही, आज की इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूरी दुनिया में और भारत में, मज़दूर वर्ग की संगठित राजनीतिक लड़ाई आज एकदम कमज़ोर पड़ गयी है और एक तरह से पार्श्वभूमि में ढकेल दी गयी है। यदि राजनीतिक संघर्ष कहीं चल भी रहे हैं तो छिटपुट और स्वयंस्फूर्त रूप में और प्रायः उनका अन्त विघटन और पराजय के रूप में हो रहा है। लेकिन ग़ौर से देखें तो उम्मीद की किरणें हमें इसी अँधेरे के भीतर से फूटती दिखती हैं। विश्वस्तर पर जारी उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों ने आज एक के

बाद एक करके मजदूरों के उन सभी राजनीतिक अधिकारों को छीनकर उसे एकदम कोने में धकेल दिया है, जो उन्होंने एक शताब्दी से भी अधिक लम्बी अवधि के दौरान कठिन संघर्ष और अकूत कुर्बानियों के ज़रिये हासिल किये थे। तरह-तरह की क़ानूनी बन्दिशों से ये राजनीतिक अधिकार इस हद तक छीन लिये गये हैं कि आर्थिक एवं क़ानूनी लड़ाइयों का मैदान भी सिकुड़कर एकदम छोटा हो गया है। श्रम क़ानूनों और श्रम न्यायालयों आदि का कोई मतलब नहीं रह गया है। आर्थिक संघर्षों की सीमाएँ जितनी संकुचित हुई हैं, उसी अनुपात में अर्थवादियों और संसदमार्गी वामपन्थियों का चरित्र भी साफ़ हुआ है। क्रान्ति की उम्मीद मेहनतकश जनता भला उनसे क्या पालेगी, जब वे स्वयं ही क्रान्ति की बातें करना बन्द कर चुके हैं। विश्व पूँजी अपने ढाँचागत संकटों के दबाव से संचालित होकर, अपने सर्वाधिक संगठित सिरे से फ़ासिज़्म की शक्तियों को संगठित कर रही है और उसके आगे संसदीय वामपन्थी एकदम कागज़ी और दन्तनखहीन साबित हो रहे हैं।

यानी कुल मिलाकर, यदि वस्तुगत परिस्थितियों की बात की जाये तो कहा जा सकता है कि क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के लिए वे अत्यधिक अनुकूल हैं। अर्थवादी और संसदवादी विभ्रम-मोहभ्रम पैदा कर पाने की गुंजाइशें अत्यधिक कम हो गयी हैं। व्यवस्था स्वयं अपनी चौहदियों को लोगों की नज़रों के सामने ज़्यादा से ज़्यादा स्पष्ट करती जा रही है। सारी समस्या क्रान्ति के सचेतन कारक तत्त्व के – सर्वहारा वर्ग के हरावल दस्ते के फिर से संगठित होने के मुद्दे पर केन्द्रित है।

हमारे देश में इस समस्या का केन्द्रबिन्दु यह है कि ज़्यादातर सर्वहारा क्रान्तिकारी तत्त्व भी इस केन्द्रीय तत्त्व को पकड़ नहीं पा रहे हैं कि नयी सर्वहारा क्रान्ति का हरावल दस्ता अतीत की राजनीतिक संरचनाओं को जोड़-मिलाकर संघटित नहीं किया जा सकता, बल्कि उसका नये सिरे से निर्माण करना होगा। यानी प्रधान पहलू पार्टी-गठन का नहीं, बल्कि पार्टी-निर्माण का है। भारत में अब तक जिसे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता रहा है, वह मूलतः और मुख्यतः विघटित हो चुका है। विभिन्न गुणों के बीच राजनीतिक बहस-मुबाहसा करके एकता बनाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए सर्वहारा वर्ग की एक सर्वभारतीय पार्टी पुनर्गठित कर पाने की प्रक्रिया विगत तीन दशकों के दौरान कहीं नहीं पहुँच सकी है। इसके बुनियादी कारण इस शिविर की और भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन के पूरे इतिहास की विचारधारात्मक कमजोरी में निहित रहे हैं, जो अलग से विस्तृत चर्चा की माँग करते हैं। कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन संसदीय मार्ग के राही बनकर 'भूतपूर्व' विश्लेषण से लैस हो चुके हैं। कुछ ऐसे हैं जो मुँह से क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष की बात करते हुए राजनीतिक-सांगठनिक आचरण में सर्वथा सामाजिक-जनवादी दिख रहे हैं और अर्थवादी दलदल में गोते लगा रहे हैं तथा मंशेविकों से भी घटिया ढंग से सांगठनिक गुन्ताड़े बिठा रहे हैं। कुछ "वामपन्थी" दुस्साहसवाद की राह पर उतना आगे जा चुके हैं कि अब वापसी मुमकिन नहीं और कुछ "वामपन्थी" दुस्साहसवाद और जुझारू अर्थवाद की विचित्र, बदबूदार अवसरवादी बिरयानी पका रहे हैं। ज़्यादातर संगठन आज भी भूमि क्रान्ति का रट्टा मारते हुए जूते के हिसाब से पैर काटकर पंगु हो चुके हैं और धनी किसानों के आन्दोलनों के

पुछल्ले, नरोदवाद के विकृत भारतीय संस्करण बन चुके हैं। कुछ मुक्त चिन्तकों के जमावड़े बन चुके हैं और कुछ रहस्यमय गुप्त सम्प्रदाय। शेष जो नेकनीयत हैं, उनकी स्थिति आज वामपन्थी बुद्धिजीवी गुप्तों से अधिक कुछ भी नहीं है।

भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी गुप्तों-संगठनों के कमजोर विचारधारात्मक आधार, ग़लत सांगठनिक कार्यशैली और ग़लत कार्यक्रम पर अमल की आधी-अधूरी कोशिशों के लम्बे सिलसिले ने आज उन्हें इस मुक़ाम पर ला खड़ा किया है कि उनके सामने पार्टी के पुनर्गठन का नहीं, बल्कि नये सिरे से निर्माण का प्रश्न केन्द्रीय हो गया है। चीजें कभी अपनी जगह रुकी नहीं रहतीं। वे अपने विपरीत में बदल जाती हैं आज अब्वल तो विचारधारा और कार्यक्रम के विभिन्न प्रश्नों पर बहस-मुवाहसे से एकता कायम होने की स्थिति ही नहीं दिखती और यदि यह हो भी जाये तो एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी नहीं बन सकती क्योंकि कुल मिलाकर, घटक संगठनों-गुप्तों के बोल्शेविक चरित्र पर ही सवाल उठ खड़ा हुआ है। आज भी क्रान्तिकारी क़तारों का सबसे बड़ा हिस्सा मा-ले गुप्तों-संगठनों के तहत ही संगठित है। यानी क़तारों का कम्पोज़ीशन (संघटन) क्रान्तिकारी है, लेकिन नीतियों का कम्पोज़ीशन (संघटन) शुरू से ही ग़लत रहा है और अब उसमें विचारधारात्मक भटकाव गम्भीर हो चुका है। इन्हीं नीतियों के वाहक नेतृत्व का कम्पोज़ीशन ज़्यादातर संगठनों में आज अवसरवादी हो चुका है। इस नेतृत्व से 'पॉलिमिक्स' के ज़रिये एकता के रास्ते पार्टी-पुनर्गठन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

भारतवर्ष में सर्वहारा क्रान्तिकारी की जो नयी पीढ़ी इस सच्चाई की आँखों में आँखें डालकर खड़ा होने का साहस जुटा सकेगी, वही नयी सर्वहारा क्रान्तियों के वाहक तथा नयी बोल्शेविक पार्टी के घटक बनने वाले क्रान्तिकारी केन्द्रों के निर्माण का काम हाथ में ले सकेगी। वही नया नेतृत्व क्रान्तिकारी क़तारों को एक नयी एकीकृत पार्टी के झण्डे तले संगठित करने में सफल हो सकेगा। इतिहास अपने को कभी हूबहू नहीं दुहराता और यह कि, सभी तुलनाएँ लंगड़ी होती हैं — इन सूत्रों को याद रखते हुए हम कहना चाहेंगे कि मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी फिर से खड़ी करने में हमें अपनी पहुँच-पद्धति तय करते हुए रूस में कम्युनिस्ट आन्दोलन के उस दौर से काफ़ी कुछ सीखना होगा, जो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में गुज़रा था। बोल्शेविज़्म की स्पिरिट को बहाल करने का सवाल आज का सबसे महत्वपूर्ण सवाल है।

सर्वहारा के हरावल दस्ते के फिर से निर्माण की प्रक्रिया आज प्रारम्भिक अवस्था में है, लेकिन वह आगे डग भर चुकी है। इसी प्रक्रिया में, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी जब मज़दूर वर्ग और अन्य मेहनतकश वर्गों के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के कामों को हाथ में लेंगे तो मज़दूर वर्ग भी उस ताक़त को हासिल करना शुरू कर देगा कि जिसके बूते एक दिन वह आगे बढ़कर संसदीय वामपन्थी और अर्थवादी भाँड़ों-विदूषकों के हाथों से मई दिवस का परचम छीन लेगा तथा अपनी विरासत अपने क़ब्ज़े में ले लेगा।

मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी एकता ही आज मई दिवस का सन्देश हो सकता है। इस एकता के बारे में लेनिन के इस उद्धरण पर ग़ौर किया जाना चाहिए :

“मज़दूरों को एकता की ज़रूरत अवश्य है और इस बात को समझना महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें छोड़कर और कोई भी उन्हें यह एकता “प्रदान” नहीं कर सकता, कोई भी एकता प्राप्त करने में उनकी सहायता नहीं कर सकता। एकता स्थापित करने का “वचन” नहीं दिया जा सकता – यह झूठा दम्भ होगा, आत्मप्रवंचना होगी; एकता बुद्धिजीवी गुणों के बीच “समझौतों” द्वारा “पैदा” नहीं की जा सकती। ऐसा सोचना गहन रूप से दुखद, भोलापन भरा और अज्ञानता भरा भ्रम है।”

“एकता को लड़कर जीतना होगा, और उसे स्वयं मज़दूर ही, वर्गचेतन मज़दूर ही अपने दृढ़, अथक परिश्रम द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।”

“इससे ज़्यादा आसान दूसरी चीज़ नहीं हो सकती है कि “एकता” शब्द को गज-गज भर लम्बे अक्षरों में लिखा जाये, उसका वचन दिया जाये और अपने को “एकता” का पक्षधर घोषित किया जाये। परन्तु, वास्तव में, एकता आगे बढ़े हुए मज़दूरों के परिश्रम तथा संगठन द्वारा ही आगे बढ़ायी जा सकती है।” (*‘त्रुदोवाया प्राव्दा’, अंक-2, 30 मई, 1914*)

मई दिवस का आज एकमात्र यही सन्देश हो सकता है कि वर्ग-चेतन मज़दूरों को आगे बढ़कर, लड़कर, अपने परिश्रम से अपनी एकता हासिल करनी होगी और राजनीतिक संघर्षों के नये सिलसिले का सूत्रपात करना होगा। मज़दूर आन्दोलन को एक बार फिर क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना के एक नये युग में प्रवेश करना होगा और इक्कीसवीं सदी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों की तैयारी में जुट जाना होगा।

(‘बिगुल’, मई, 2003)

एक नये क्रान्तिकारी मज़दूर अख़बार की ज़रूरत

आज एक **नये क्रान्तिकारी मज़दूर अख़बार** की ज़रूरत है। **बेहद, बुनियादी** और फ़ौरी ज़रूरत है। बल्कि इस मामले में पहले ही देर हो चुकी है।

बेहतर तो यह होता कि यह अखिल भारतीय पैमाने का, कम से कम साप्ताहिक, अख़बार होता जो सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में एक साथ छपता। मगर आज यह सम्भव नहीं है। देश के अधिकांश या कम से कम कुछ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ग्रुपों, संगठनों की संयुक्त शक्ति के बूते पर ही इसे सम्भव बनाया जा सकता है। अभी यह सम्भव नहीं है, क्योंकि क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच तमाम उसूली और अमली मतभेद मौजूद हैं। इसलिए फ़िलहाल एक मासिक बुलेटिन से हम शुरुआत कर रहे हैं।

हम एक ऐतिहासिक तूफ़ानी दौर की चौखट पर खड़े हैं!

(1966-1976) के दौरान माओ त्से-तुङ ने कहा था, “अब से लेकर अगले पचास से सौ वर्षों तक का युग एक ऐसा महान युग होगा जिसमें दुनिया की सामाजिक व्यवस्था बुनियादी तौर पर बदल जायेगी। वह एक ऐसा भूकम्पकारी युग होगा जिसकी तुलना इतिहास के पिछले किसी भी युग से नहीं की जा सकेगी। एक ऐसे युग में रहते हुए, हमें उन महान संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए जो अपनी विशिष्ट चिन्ताओं में अतीत के तमाम संघर्षों से कई मायने में भिन्न होंगे।”

पूरी दुनिया और अपने देश के हालात को अच्छी तरह देखने-परखने के बाद, हमारा मानना है कि **हम एक उथल-पुथल भरे, ज़बरदस्त आँधियों-तूफ़ानों से भरे क्रान्तिकारी बदलाव के ऐतिहासिक दौर की दहलीज पर खड़े हैं। यह तूफ़ान के पहले की शान्ति है, घुटन और उमस से भरी हुई। यह टूटने ही वाली है। हम जिस नये ऐतिहासिक संक्रान्ति काल में प्रवेश करने वाले हैं, उसकी पूरे मन से, पूरी ताक़त से, पूरी लगन से तैयारी ज़रूरी है। क्रान्तिकारी संकट के भावी समय में मेहनतकश अवाम के असन्तोष और गुस्से के विस्फोट थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से लगातार होते रहेंगे। यदि सर्वहारा वर्ग का हरावल दस्ता – उसकी क्रान्तिकारी पार्टी गठित हो जायेगी, मज़बूत हो जायेगी और तैयारी रहेगी, यदि मज़दूर वर्ग और व्यापक मेहनतकश अवाम के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार, संगठन और आन्दोलन का काम करते हुए वह खुद को और आम मेहनतकश आबादी को चाक-चौबन्द रखेगी; तभी आगे क्रान्तिकारी संकट के किसी विस्फोट को क्रान्ति में बदला जा सकेगा या फिर योजनाबद्ध व्यवस्थित तैयारी के बाद वर्तमान पूँजीवादी निजाम का क्रान्ति के द्वारा नाश किया जा सकेगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो ‘ऐतिहासिक मोड़ हमें बिना तैयारी की हालत में आ दबोचेंगे’ और हम चूक जायेंगे।**

हालाँकि आज लेनिन और माओ के देश में भी सर्वहारा वर्ग की सत्ता क़ायम नहीं है

और पूँजीवाद फिर से बहाल हो गया है। **पर यह क्रान्ति की अन्तिम हार नहीं है।** इतिहास में पहले भी ऐसा हुआ है कि पुराने वर्ग पर फ़ैसलाकुन जीत से पहले नया वर्ग कई बार हारा है। मज़दूर वर्ग की लड़ाई तो वैसे भी काफ़ी कठिन है क्योंकि उसे चार हज़ार वर्षों से भी अधिक पुरानी निजी सम्पत्ति की व्यवस्था की हर निशानी को मिटाकर, समाजवादी बदलाव के लम्बे रास्ते से होकर वर्गविहीन, शोषणमुक्त समाज तक जाना है।

हालात बताते हैं साम्राज्यवाद और पूँजीवाद को आखिरी तौर पर क़ब्र में सुलाने वाली नयी समाजवादी क्रान्तियों का जन्म होना ही है। फ़िलहाल वे संकटपूर्ण हालात के कोख में पल-बढ़ रही हैं। अमेरिका और यूरोप के धनी देशों तक में पूँजीवाद की बीमारियाँ लाइलाज हो चुकी हैं, भारत और एशिया-अफ़्रीका-लातिन अमेरिका के ग़रीब और पिछड़े पूँजीवादी देशों की तो बात ही क्या है!

विश्व पूँजीवाद को इसकी लाइलाज बीमारियों से सिर्फ़ मौत ही निजात दिला सकती है!

बात न सिर्फ़ इतनी है कि पूँजीवाद का अब तक का इतिहास ग़रीबों-मजदूरों, किसानों-मज़दूरों की लूट और तबाही का, विनाश और बरबादी का, मारकाट और युद्धों का सिलसिलेवार लेखाजोखा है। बात न सिर्फ़ इतनी है कि पूँजीवादी विकास की गाड़ी बिना धनी-ग़रीब की खाई को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाये, बिना मेहनतकशों को निचोड़े, और बिना लुटेरे पूँजीपतियों की गलाकाटू आपसी होड़ और युद्ध के आगे बढ़ ही नहीं सकती। पूँजीवाद के रास्ते खुशहाली का अर्थ ही है, कमरों की भारी आबादी की लूट और बदहाली की क़ीमत पर मुट्ठीभर लुटेरों की खुशहाली। इन सच्चाइयों को तो पूँजीवाद के लगभग दो सौ वर्षों के इतिहास ने सिद्ध कर ही दिया है। बीसवीं सदी पूँजीवाद के विकास की चरम अवस्था की सदी – साम्राज्यवाद की सदी रही है जिसने अब यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व पूँजीवाद अब इन्सानियत को कुछ भी अच्छा नहीं दे सकता, और यह भी कि, यह अपने खुद के संकटों से लाख कोशिशों के बावजूद मुक्ति नहीं पा सकता, थोड़ी देर के लिए राहत भले ही पा ले।

पूँजीपति और पूँजीवादी भूस्वामी अपने कारख़ानों और फ़ार्मों में चीज़ें इसलिए नहीं पैदा करते कि समाज उनका उपयोग करे। वे चीज़ें मुनाफ़ा कमाने के लिए, बेचने के लिए, बाज़ार के लिए पैदा करते हैं। उनका एक ही मन्त्र है – ‘सस्ता से सस्ता ख़रीदो, महँगा से महँगा बेचो।’ उनकी एकमात्र चिन्ता यह होती है कि उनकी पूँजी किस तरह लगातार बढ़ती रहे। वे कच्चा माल और मज़दूरों का श्रम सस्ता से सस्ता ख़रीदते हैं। मज़दूर मजबूर होते हैं क्योंकि कारख़ानों और उत्पादन के सभी साधनों के मालिक पूँजीपति ही होते हैं और राज्यसत्ता भी उन्हीं के प्रतिनिधियों के हाथों में होती है। पूँजीपति मज़दूर को सिर्फ़ उतना ही देते हैं जितने में वे अपना पेट पालकर उनके लिए काम करते रह सकें। माल की बिक्री से मिला शेष सारा रुपया वे हड़प जाते हैं। लगातार नयी-नयी मशीनें लाकर वे मज़दूरों से कम से कम समय में ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सा लूटते हैं। नयी मशीनें आने पर फ़ाज़िल हो गये मज़दूरों को

वे सड़कों पर धकेल देते हैं। फिर भी एक मंजिल यह आती है कि वे इतना पैदा कर देते हैं कि चीजों के खरीदार नहीं रह जाते। पूँजीवादी उत्पादन ज़्यादा चीजें पैदा करने के साथ ही जनता को ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़कर उसकी आमदनी पर सीमा भी बाँधता चलता है और वह उसके द्वारा तय कीमतों पर चीजें नहीं खरीद पाती। और पूँजीपति दाम नीचे कर नहीं सकता क्योंकि वह कुछ भी कर सकता है पर अपना मुनाफ़ा नहीं छोड़ सकता। भले ही इसके लिए उसे अनाज जलाना और समुद्र में फेंकना पड़े या उत्पादन ही रोकना पड़े।

इस तरह बाज़ार में मन्दी आ जाती है। इस स्थिति से बचने के लिए पूँजीपति लुटेरों ने अपने लूट का तन्त्र पूरी दुनिया में फैला दिया। एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के देशों को हथियारों के जोर पर गुलाम बनाकर वे पहले से ही लूट रहे थे।

बीसवीं सदी में यह लूट और गहरी और व्यापक हो गयी। यह एकाधिकारी पूँजी के दुनियाभर में फैलाव और कूपन काटकर लूटने का नया साम्राज्यवादी युग था। फिर उपनिवेशों की जनता की आज़ादी की लड़ाई के नतीजे के तौर पर साम्राज्यवादी लुटेरे गुलाम देशों को राजनीतिक आज़ादी देने के लिए मजबूर हो गये। पर जिन पिछड़े देशों को राजनीतिक आज़ादी मिली उनमें से ज़्यादातर देशों में हुकूमत देशी पूँजीपतियों के हाथों में ही आयी। अब उन्होंने अपने देश की जनता को लूटना शुरू किया। साथ ही, उन्होंने साम्राज्यवादियों की पूँजी भी देश में लगी रहने दी और उन्हें भी लूटने का मौक़ा दिया। बल्कि नये-नये उद्योगों में भी विदेशी पूँजी को वे न्यौता देते रहे। कारण कि नयी मशीनों और मशीनी हुनर के लिए तथा पूँजी के लिए वे अमीर देशों के पूँजीपतियों पर आश्रित थे। नतीजतन, साम्राज्यवादियों से थोड़ी बहुत आज़ादी लेकर कुछ दिनों तक पूँजीवादी विकास के रास्ते पर चलने के बाद ग़रीब देशों के पूँजीपति शासकों ने आखिरकार विदेशी पूँजी के लिए देश के दरवाज़ों को पूरी तरह खोल दिया। यह उनकी मजबूरी भी थी और ज़रूरत भी। साम्राज्यवादी देशों का इसके लिए दबाव भी था क्योंकि वे इतिहास की सबसे गम्भीर मन्दी के शिकार थे और नये-नये बाज़ार की तलाश के लिए बेताब थे।

मगर लगाने के लिए उनके पास पूँजी का अम्बार इतना अधिक था कि एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के देशों में इसके खपने की गुंजाइश ही नहीं थी। साम्राज्यवादी देश ग़रीब देशों के मेहनतकशों का श्रम और इनका कच्चा माल मिट्टी के मोल तो खरीद सकते थे (और खरीद ही रहे हैं) पर सदियों की लूट से तबाह इन देशों में उनके मालों के लिए बाज़ार एक हद तक ही बन सकता था। नतीजतन यह समस्या फिर भी बनी रहती कि पूँजी के अम्बार को कहाँ लगायें। इसी समस्या को हल करने का एक नया रास्ता पूँजीपतियों ने इधर यह निकाला है कि बड़े पैमाने पर उन्होंने सट्टाबाज़ार, विज्ञापन, बीमा, ज़मीन-जायदाद आदि में पूँजी लगायी है जहाँ वास्तव में किसी चीज़ का उत्पादन नहीं होता पर पूँजी ऐसे बढ़ती है जैसे हवा से फूलता गुब्बारा। आज पूरी दुनिया के पैमाने पर दूसरे देशों में यदि 70 डॉलर पूँजी लग रही है तो उसमें से सिर्फ़ एक डॉलर वास्तविक उत्पादन में लग रहा है।

दुनिया के मेहनतकशों की लूट में साम्राज्यवादियों के छोटे साज़ीदार

— गरीब देशों के शासक पूँजीपति

यह है आज पूरी दुनिया के पैमाने पर पूँजीवाद का चेहरा। यह है उसका अति परजीवी चरित्र! पिछले बीस वर्षों के दौरान पूरी दुनिया के पैमाने पर पूँजी ने पहले हमेशा के मुकाबले तेज़ रफ़्तार से दौड़ते हुए, देशों की सीमाओं को लाँघते हुए एक भूमण्डलीय बाज़ार का, पहले हमेशा से अधिक एकीकृत विश्व बाज़ार का निर्माण किया है। बुनियादी ज़रूरत की चीज़ों के उत्पादन पर पूरी दुनिया के पैमाने पर मुट्टीभर दैत्याकार एकाधिकारी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्ज़ा है। इसके अलावा सबसे बड़ी इज़ारेदार कम्पनियाँ और पूँजी का बड़ा हिस्सा बीमा, विज्ञापन, बैंक, रेडियो-टी.वी. आदि-आदि में लगा हुआ है। फिर भी दुनियाभर के साम्राज्यवादी डाकुओं का संकट यह है कि वे अपनी पूँजी का अम्बार कहाँ लगायें! जब वे पूँजी कहीं लगाते हैं तो अतिलाभ निचोड़ते हैं और नतीजतन पूँजी का अम्बार और बढ़ जाता है। समाधान की हर कोशिश लौटकर संकट को और गहरा कर जाती है। साम्राज्यवादी लुटेरे पूरी दुनिया के बाज़ार की बन्दरबॉट के लिए कुत्तों की तरह लड़ रहे हैं।

भारत और ऐसे तमाम गरीब देशों के पूँजीपतियों ने आज देश की अर्थव्यवस्था के दरवाज़ों को साम्राज्यवादी लुटेरों के लिए पूरी तरह खोल दिया है। विदेशी लुटेरों और देशी लुटेरों ने अपनी-अपनी मजबूरियों और ज़रूरतों के चलते आपस में गाँठ जोड़ ली है। मुनाफ़े के बँटवारे के लिए वे आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, खींचातानी करते हैं पर आम मेहनतकश आबादी के खिलाफ़ वे पूरी तरह एक हैं।

साम्राज्यवादियों के साथ आज लुटेरी जमात में टाटा-बिड़ला-अम्बानी जैसे बड़े पूँजीपतियों से लेकर छोटे पूँजीपति तक शामिल हैं। साथ ही धनी किसान, पूँजीवादी भूस्वामी, फ़ार्मर आदि तथा मध्यम वर्ग के खुशहाल तबके भी इन्हीं लुटेरों के लग्न-भग्न हैं, इन्हीं के टुकड़खोर हैं और मज़दूरों, छोटे व गरीब किसानों तथा आम मध्यम वर्ग के लोगों के दुश्मन हैं।

सभी चुनावबाज़ पूँजीवादी पार्टियाँ इन्हीं लुटेरों के अलग-अलग हिस्सों की, और कुल मिलाकर इस पूरी लुटेरी जमात की सेवा करती है। चुनावबाज़ वामपन्थी दल भी इन्हीं लुटेरों के निजाम की हिफ़ाज़त में तैनात हैं और इन्हें फ़िलहाल आम मेहनतकश आबादी को चुनावी राजनीति के दायरे में कैद रखने तथा सिर्फ़ दुअन्नी-चवन्नी के लिए लड़ने की भूल-भुलैया में फँसाये रखने के लिए तैनात किया गया है।

नयी आर्थिक नीति का सूनी चेहरा

पिछले चार वर्षों से नरसिंह राव की सरकार साम्राज्यवादी सूदखोरों-लुटेरों और विश्व बैंक-अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष जैसी उनकी एजेंसियों द्वारा सुझाये गये नुस्खों के आधार पर नयी आर्थिक नीतियों को लागू कर रही है। वह दावा कर रही है कि इन नीतियों के अमल से देश खुशहाली के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है। नक़ली समाजवाद के नेहरू के ज़माने वाले झण्डे को उतारकर खुले पूँजीवाद का झण्डा लहरा दिया गया है। सरकारी कल-कारखाने, सड़क, रेल, डाक-तार आदि को धीरे-धीरे देशी पूँजीपतियों और विदेशी कम्पनियों को सौंपा

जाने लगा है। सरकार दावा कर रही है कि संकट अब लगभग दूर हो चुका है और खुशहाली का दौर शुरू हो रहा है।

ज़रा इस खुशहाली के दौर की बानगी तो देखिये! उद्योगों के नवीनीकरण के नाम पर पिछले चार वर्षों में हर वर्ष लगभग 40-50 लाख मज़दूरों का रोज़गार छिना है। नयी भर्तियाँ बन्द हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और बड़े एकाधिकारी घरानों के अजगरी शिकंजे में अब तक करीब चार लाख छोटे और घरेलू उद्योग-धन्धे तबाह हो चुके हैं। साथ ही, बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद आदि पुराने औद्योगिक शहरों के जूट, कपड़ा आदि के कारखानों और पुरानी चीनी मिलों पर ताले लटक चुके हैं। बेरोज़गारों की संख्या पूरे देश में 20 करोड़ के आसपास जा पहुँची है जो इस सदी के अन्त तक दूनी हो जायेगी। छोटे और मँझोले किसान पूँजी की मार से तबाह अपनी जगह-ज़मीन से और तेज़ी से उजड़ते जा रहे हैं और उनकी एक भारी आबादी जानवरों-सी ज़िन्दगी बसर करके भी पेट पालने के लिए शहरों की ओर भाग रही है।

देशी-विदेशी लुटेरे जो नये उद्योग लगा रहे हैं, उनमें ज़्यादातर काम कैजुअल, टेम्परेरी मज़दूरों से या ठेके पर काम करा रहे हैं। स्थायी नौकरियाँ नाममात्र की होती हैं। इस तरह पहले ये डाकू बेकारों की भीड़ खड़ी कर रहे हैं और फिर उनकी मेहनत मिट्टी के मोल खरीदकर अपनी तिजोरियाँ भर रहे हैं।

यह सरकार जब बनी थी तो देश पर 11 खरब रुपये का विदेशी ऋण था जो अब बढ़कर 40 खरब रुपये हो गया है। देश का हर व्यक्ति विदेशी ऋण के ब्याज और मूल की किश्तों के रूप में सात सौ रुपये का भुगतान करता है। देश के बजट का चालीस फीसदी हिस्सा विदेशी ऋण की किश्तें और ब्याज चुकाने में ही चला जाता है।

पर नरसिंह राव भी सही ही कह रहे हैं। खुशहाली आयी है। अब यह बात दीगर है कि वह सिर्फ़ ऊपर के बीस फीसदी लोगों के लिए आयी है। और नीचे की तथा बीच की अस्सी फीसदी आबादी की तबाही-बरबादी की क़ीमत पर आयी है। दुनिया की ज़्यादातर महँगी कारें, तरह-तरह की मोटरसाइकिलें और स्कूटर, फ्रिज-एयरकण्डिशनर, रंगीन टी.वी., कपड़े धोने-झाड़ू लगाने की मशीनें, पेप्सी, कोक और डिब्बाबन्द खाने की महँगी चीज़ों वगैरह से बाज़ार पट चुके हैं। मेहनतकशों के भारत और चोट्टों के भारत के बीच का बँटवारा पहले कभी भी इतना साफ़ नहीं था। तबाही-बरबादी के समन्दर में ऐयाशी और विलासिता की इतनी ऊँची-ऊँची मीनारें कभी नहीं थीं।

यह नयी समाजवादी क्रान्ति की तैयारी का दौर है!

वैसे कहने को तो सभी ग़ैर-कांग्रेस विरोधी चुनावी पार्टियाँ नरसिंह राव सरकार की नयी आर्थिक नीति का विरोध करती हैं, पर उनका विरोध एकदम फ़र्ज़ी है, सिर्फ़ जनता से वोट लेने के लिए है। जिन राज्यों में जनता दल, भाजपा, वामपन्थी दलों, सपा-बसपा आदि की सरकारें रही हैं और आज भी हैं वे सबकी सब निजीकरण और विदेशी कम्पनियों को लूट की खुली छूट की नीति लागू करने में केन्द्र की सरकार से एक क़दम भी पीछे नहीं रही

हैं। इन सभी पार्टियों का भाण्डा तो भारतीय पूँजीपतियों के संगठन सी.आई.आई. के अध्यक्ष राजीव कौल ने पिछले दिनों खुद ही यह कहकर फोड़ दिया कि चुनाव में चाहे कोई भी दल जीते, आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया जारी रहेगी। (जनसत्ता : 5 मार्च '96, नयी दिल्ली)

कम से कम इस मामले में हम भी पूँजीपतियों के इस सरगना के विचारों से सहमत हैं कि अब भारतीय पूँजीवाद इस राह को उलट या बदल नहीं सकता। लेकिन इसमें हम यह भी जोड़ देना चाहते हैं कि यह राह इतिहास के उस क़ब्रिस्तान तक जाती है जहाँ अतीत के सभी शासक वर्ग और ज़ालिम व्यवस्थाएँ दफ़न हैं। और यह भी कि **अब इस सफ़र की मंज़िल बहुत दूर नहीं है।**

राज-काज, समाज और उत्पादन की कोई भी व्यवस्था आज तक अमर नहीं रही है। लूट और दमन का कोई भी तन्त्र हमेशा के लिए कायम नहीं रहा। पूँजीवाद भी अमर नहीं है – न तो पूरी दुनिया के पैमाने पर, न ही हमारे देश में। यह ज़ोरो-जुल्म, इतनी तबाही जनता हमेशा के लिए बरदाश्त नहीं कर सकती। चोरों-लुटेरों का शासन जारी नहीं रह सकता। सिर्फ़ गत पाँच वर्षों के कांग्रेसी शासन के दौरान लगभग 9 खरब रुपये के घोटाले हुए हैं। जो नेता और अफ़सर पूँजीपति डाकू-लुटेरों के राजनीतिक नुमाइन्दे हैं, वे खुद भी चोरी-पाकेटमारी भला क्यों न करें? अब कुछ मुक़दमे चलाकर और कुछ प्यादे पिटवाकर इस व्यवस्था के दामन को साफ़ दिखलाने की चाहे जितनी भी कोशिश की जाये, असलियत दिन के उजाले के मानिन्द साफ़ है।

साम्राज्यवाद का यह नया दौर आर्थिक नव-उपनिवेशवाद का दौर है। यह विश्व पूँजीवाद के असाध्य, ढाँचागत और अन्तकालिक रोगों-बीमारियों का दौर है। यह मज़दूर क्रान्तियों के अधिक उन्नत, अधिक सबल और अधिक सम्भावना- सम्पन्न रूपों के पैदा होने का दौर है। यह भारत और ऐसे तमाम पिछड़े देशों में, जो विश्व पूँजीवादी तन्त्र की कमज़ोर कड़ियाँ हैं, साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद विरोधी नयी क्रान्तियों का दौर है। यह नयी समाजवादी क्रान्तियों का दौर है। एकदम फ़ीरी तौर पर, यह इन नयी क्रान्तियों की तैयारी का समय है। एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन का समय है।

सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के बिना क्रान्ति असम्भव है!

इतिहास गवाह है कोई भी सामाजिक व्यवस्था चाहे जितनी भी जर्जर हो, तब तक समाप्त नहीं होती जब तक समाज की विकासमान शक्तियाँ संगठित होकर उसे नष्ट करके नयी व्यवस्था का निर्माण नहीं करतीं। पूँजीवाद का नाश करके निजी सम्पत्ति की पूरी व्यवस्था को समाप्त करने का सिलसिला शुरू करने का ऐतिहासिक मिशन दुनियाभर के मज़दूर वर्ग का ही है। यह अटल सत्य है।

भारत में भी नयी क्रान्ति की अगुवाई यहाँ का मज़दूर वर्ग ही करेगा – सबसे आगे औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की क़तारें और फिर ग्रामीण सर्वहारा वर्ग की क़तारें। सर्वहारा वर्ग ही पूरी आम मेहनतकश आबादी – मध्यम एवं ग़रीब किसानों तथा सभी तबाहहाल मध्यम वर्गों को पूँजी के जुए से मुक्ति के संघर्ष में नेतृत्व देगा।

पर इतिहास का एक ज़रूरी सबक यह भी है कि पूरे देशस्तर पर, वैज्ञानिक समाजवादी विचारधारा के आधार पर – आज के सन्दर्भों में **मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन** और **माजो** के विचारों के आधार पर और क्रान्ति के एक सही कार्यक्रम के आधार पर, **एक क्रान्तिकारी पार्टी संगठित किये बिना सर्वहारा वर्ग क्रान्ति सम्पन्न नहीं कर सकता, उसकी अगुवाई नहीं कर सकता ।**

भारत के मज़दूर वर्ग के सामने आज यह सबसे ज़रूरी, सबसे पहला काम है। उसे सोचना है कि **मज़दूर वर्ग की अखिल भारतीय स्तर की क्रान्तिकारी पार्टी – एक सच्चे बोल्शेविक ढंग की पार्टी कैसे गठित हो?**

हमारी समझ है कि ठहराव को तोड़कर सच्चे अर्थों में, सिद्धान्त और व्यवहार में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ग्रुपों को एकजुट करने के लिए और नये सिरे से इन्कलाबी पार्टी बनाने की कोशिशों को तेज़ करने के लिए मज़दूर वर्ग के एक नये, इन्कलाबी अखबार की ज़रूरत है। **‘बिगुल’** का प्रकाशन इसी ज़रूरत और ज़िम्मेदारी के अहसास से शुरू किया गया है।

क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने के लिए एक क्रान्तिकारी राजनीतिक अखबार ज़रूरी है

इधर एक लम्बे समय से देखने में यह आ रहा है कि देश के क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के छोटे-छोटे ग्रुप सिर्फ़ क्रान्तिकारी प्रचार और आम आह्वान की कार्रवाइयों तक ही सिमट गये हैं। विचारधारा और क्रान्ति के कार्यक्रम आदि पर उनका तमाम साहित्य कार्यकर्ताओं तक और मध्यम वर्ग के क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों तक ही पहुँच पाता है। सन्तुलन कायम करने के लिए वे किसानों या मज़दूरों के संगठन या यूनियन बनाते हैं और कुछ रस्मी कार्रवाइयों – रूटीन आन्दोलनों तक सीमित रह जाते हैं। व्यावहारिक ठोस काम के नाम पर, अलग यूनियन खड़ी करके भी कुछ क्रान्तिकारी वास्तव में थोड़ा अधिक रैडिकल या गरम क्रिस्म का अर्थवाद ही करते हैं। भौति-भौति के अर्थवादियों और ट्रेडयूनियनवादियों से ऊबा हुआ मज़दूर वर्ग उन्हें एक क्रान्तिकारी विकल्प के रूप में क़तरई नहीं देख पाता। दूसरी ओर, कुछ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट अभी भी बुनियादी वर्गों के व्यापक जनसंगठन बनाने के बजाय अति वामपन्थी दुस्साहसवादी लाइन लागू कर रहे हैं।

हम समझते हैं कि व्यावहारिक ठोस कामों के नाम पर सिर्फ़ आर्थिक माँगों तक सीमित रहना, या फिर इन्हें एकदम ही छोड़ देना दोनों ग़लत है। मज़दूर वर्ग को आर्थिक माँगों के साथ ही उसके राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ने की शिक्षा देनी होगी तथा साथ ही उनके बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई को तेज़ करना होगा। इस तरह विभिन्न कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों की सोच प्रयोगों में उतरेगी, उनके बीच का ठहराव टूटेगा और आपसी बहस-विचार को नयी गति मिलेगी।

हम ‘बिगुल’ को इसका साधन बनाना चाहते हैं। हम इसके माध्यम से सभी सर्वहारा क्रान्तिकारियों को भारतीय क्रान्ति की समस्याओं पर खुली बहस का न्यौता देते हैं। यह अच्छा

रहेगा। इससे मेहनतकश आबादी की राजनीतिक शिक्षा का काम भी तेज़ होगा और भविष्य में बनने वाली क्रान्तिकारी पार्टी का उनमें व्यापक आधार तैयार होगा।

‘विगुल’ का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

- (1) ‘विगुल’ व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग-संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
- (2) ‘विगुल’ देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
- (3) ‘विगुल’ भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को यह नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसों लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
- (4) ‘विगुल’ मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर “कम्युनिस्टों” और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवादी से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।
- (5) ‘विगुल’ मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

इन संकल्पों के साथ हम यह एक शुरुआत कर रहे हैं जैसेकि सैकड़ों मील लम्बी यात्रा की शुरुआत भी एक छोटे से क़दम से ही होती है।

(विगुल, प्रवेशांक, अप्रैल 1996 अंक में प्रकाशित)

